"અહો ! શ્રુતજ્ઞાનમ્" ગ્રંથ જીર્ણોદ્ધાર ૨૨૧

ન્યાયગ્રંથ

વાદાર્થ સંગ્રહ ભાગ-૩

: દ્રવ્ય સહાયક :

સુવિશાળ ગચ્છાધિપતિ પૂ. આ. શ્રી વિજય રામચંદ્ર-ભદ્રંકર-
કુંદકુંદસૂરીશ્વરજી મહારાજના શિષ્યરત્ન
વર્ધમાનતપોનિધિ પૂ. ગણિવર્ય શ્રી નયભદ્રવિજયજી મ.સા.ની પ્રેરણાથી
શ્રી શ્વે. મૂ. પૂ. જૈન સંઘ, આરાધના ભવન, વિરાર, મુંબઈ
જ્ઞાનખાતાની ઉપજમાંથી

: સંયોજક :

શાહ બાબુલાલ સરેમલ બેડાવાળા
શ્રી આશાપૂરણ પાર્શ્વનાથ જૈન જ્ઞાનભંડાર
શા. વિમળાબેન સરેમલ જવેરચંદજી બેડાવાળા ભવન
હીરાજૈન સોસાયટી, સાબરમતી, અમદાવાદ-૫
(મો.) 9426585904 (ઓ.) 22132543

સંવત ૨૦૭૨ ઈ. ૨૦૧૬

श्री आशापूरण पार्श्वनाथ जैन ज्ञानभंडार

संयोजक – शाह बाबुलाल सरेमल - (मो.) 9426585904 (ओ.) 22132543 - ahoshrut.bs@gmail.com
शाह वीमळाबेन सरेमल जवेरचंदजी बेडावाळा भवन
हीराजैन सोसायटी, रामनगर, साबरमती, अमदावाद-05.

अहो श्रुतज्ञानम् ग्रंथ जीर्णोद्धार – संवत २०६५ (ई. 2009) सेट नं.-१

प्रायः अप्राप्य प्राचीन पुस्तकों की स्केन डीवीडी बनाई उसकी सूची। *यह पुस्तके www.ahoshrut.org वेबसाइट से भी डाउनलोड कर सकते हैं।*

क्रमांक	पुस्तकनुं नाम	कर्त्ता-टीकाकार-संपादक	पृष्ठ
001	श्री नंदीसूत्र अवचूरी	पू. विक्रमसूरिजी म.सा.	238
002	श्री उत्तराध्ययन सूत्र चूर्णी	पू. जिनदासगणि चूर्णीकार	286
003	श्री अर्हद्गीता-भगवद्गीता	पू. मेघविजयजी गणि म.सा.	84
004	श्री अर्हच्चूडामणि सारसटीकः	पू. भद्रबाहुस्वामी म.सा.	18
005	श्री यूक्ति प्रकाशसूत्रं	पू. पद्मसागरजी गणि म.सा.	48
006	श्री मानतुङ्गशास्त्रम्	पू. मानतुंगविजयजी म.सा.	54
007	अपराजितपृच्छा	श्री बी. भट्टाचार्य	810
008	शिल्प स्मृति वास्तु विद्यायाम्	श्री नंदलाल चुनिलाल सोमपुरा	850
009	शिल्परत्नम् भाग-१	श्रीकुमार के. सभात्सव शास्त्री	322
010	शिल्परत्नम् भाग-२	श्रीकुमार के. सभात्सव शास्त्री	280
011	प्रासादतिलक	श्री प्रभाशंकर ओघडभाई	162
012	काश्यशिल्पम्	श्री विनायक गणेश आपटे	302
013	प्रासादमञ्जरी	श्री प्रभाशंकर ओघडभाई	156
014	राजवल्लभ याने शिल्पशास्त्र	श्री नारायण भारती गोंसाई	352
015	शिल्पदीपक	श्री गंगाधरजी प्रणीत	120
016	वास्तुसार	श्री प्रभाशंकर ओघडभाई	88
017	दीपार्णव उत्तरार्ध	श्री प्रभाशंकर ओघडभाई	110
018	જિનપ્રાસાદ માર્તણ્ડ	શ્રી નંદલાલ ચુનીલાલ સોમપુરા	498
019	जैन ग्रंथावली	श्री जैन श्वेताम्बर कोन्फ्रन्स	502
020	હીરકલશ જૈન જ્યોતિષ	શ્રી હિમ્મતરામ મહાશંકર જાની	454
021	न्यायप्रवेशः भाग-१	श्री आनंदशंकर बी. ध्रुव	226
022	दीपार्णव पूर्वार्ध	श्री प्रभाशंकर ओघडभाई	640
023	अनेकान्त जयपताकाख्यं भाग-१	पू. मुनिचंद्रसूरिजी म.सा.	452
024	अनेकान्त जयपताकाख्यं भाग-२	श्री एच. आर. कापडीआ	500
025	प्राकृत व्याकरण भाषांतर सह	श्री बेचरदास जीवराज दोशी	454
026	तत्त्पोपप्लवसिंहः	श्री जयराशी भट्ट, बी. भट्टाचार्य	188
027	शक्तिवादादर्शः	श्री सुदर्शनाचार्य शास्त्री	214
028	क्षीरार्णव	श्री प्रभाशंकर ओघडभाई	414
029	वेधवास्तु प्रभाकर	श्री प्रभाशंकर ओघडभाई	192

030	**शिल्परत्नाकर**	**श्री नर्मदाशंकर शास्त्री**	**824**
031	**प्रासाद मंडन**	**पं. भगवानदास जैन**	**288**
032	**श्री सिद्धहेम बृहद्वृत्ति बृहन्न्यास अध्याय-१**	**पू. लावण्यसूरिजी म.सा.**	**520**
033	**श्री सिद्धहेम बृहद्वृत्ति बृहन्न्यास अध्याय-२**	**पू. लावण्यसूरिजी म.सा.**	**578**
034	**श्री सिद्धहेम बृहद्वृत्ति बृहन्न्यास अध्याय-३ (१)**	**पू. लावण्यसूरिजी म.सा.**	**278**
035	**श्री सिद्धहेम बृहद्वृत्ति बृहन्न्यास अध्याय-3 (२) (३)**	**पू. लावण्यसूरिजी म.सा.**	**252**
036	**श्री सिद्धहेम बृहद्वृत्ति बृहन्न्यास अध्याय-५**	**पू. लावण्यसूरिजी म.सा.**	**324**
037	વાસ્તુનિઘંટુ	પ્રભાશંકર ઓઘડભાઈ સોમપુરા	302
038	તિલકમઞ્જરી ભાગ-૧	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	196
039	તિલકમઞ્જરી ભાગ-૨	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	190
040	તિલકમઞ્જરી ભાગ-૩	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	202
041	સપ્તસન્ધાન મહાકાવ્યમ્	પૂ. વિજયઅમૃતસૂરિશ્વરજી	480
042	સપ્તભઙ્ગીમિમાંસા	પૂ. પં. શિવાનન્દવિજયજી	228
043	ન્યાયાવતાર	સતિષચંદ્ર વિદ્યાભૂષણ	60
044	વ્યુત્પત્તિવાદ ગુઢાર્થતત્ત્વાલોક	શ્રી ધર્મદત્તસૂરિ (બચ્છા ઝા)	218
045	સામાન્યનિર્યુક્તિ ગુઢાર્થતત્ત્વાલોક	શ્રી ધર્મદત્તસૂરિ (બચ્છા ઝા)	190
046	સપ્તભઙ્ગીનયપ્રદીપ બાલબોધિનીવિવૃત્તિઃ	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	138
047	વ્યુત્પત્તિવાદ શાસ્ત્રાર્થકલા ટીકા	શ્રીવેણીમાધવ શાસ્ત્રી	296
048	નયોપદેશ ભાગ-૧ તરઙ્ગિણીતરણી	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	210
049	નયોપદેશ ભાગ-૨ તરઙ્ગિણીતરણી	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	274
050	ન્યાયસમુચ્ચય	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	286
051	સ્યાદ્યાર્થપ્રકાશઃ	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	216
052	દિન શુદ્ધિ પ્રકરણ	પૂ. દર્શનવિજયજી	532
053	બૃહદ્ ધારણા યંત્ર	પૂ. દર્શનવિજયજી	113
054	જ્યોતિર્મહોદય	સં. પૂ. અક્ષયવિજયજી	112

શ્રી આશાપૂરણ પાર્શ્વનાથ જૈન જ્ઞાનભંડાર

સંયોજક – બાબુલાલ સરેમલ શાહ
શાહ વીમળાબેન સરેમલ જવેરચંદજી બેડાવાળા ભવન
હીરાજૈન સોસાયટી, રામનગર, સાબરમતી, અમદાવાદ-૦૫.
(મો.) ૯૪૨૬૫૮૫૯૦૪ (ઓ) ૨૨૧૩૨૫૪૩ (ઇ-મેલ) ahoshrut.bs@gmail.com

અહો શ્રુતજ્ઞાનમ્ ગ્રંથ જીર્ણોદ્ધાર – સંવત ૨૦૬૬ (ઈ. ૨૦૧૦) – સેટ નં-૨

પ્રાયઃ જીર્ણ અપ્રાપ્ય પુસ્તકોને સ્કેન કરાવીને ડી.વી.ડી. બનાવી તેની યાદી.

આ પુસ્તકો www.ahoshrut.org વેબસાઇટ પરથી પણ ડાઉનલોડ કરી શકાશે.

ક્રમ	પુસ્તકનું નામ	ભાષા	કર્તા-ટીકાકાર-સંપાદક	પૃષ્ઠ
055	श्री सिद्धहेम बृहद्वृत्ति बृहद्न्यास अध्याय-६	सं	पू. लावण्यसूरिजी म.सा.	296
056	विविध तीर्थ कल्प	सं	पू. जिनविजयजी म.सा.	160
057	ભારતીય જૈન શ્રમણ સંસ્કૃતિ અને લેખનકળા	ગુજ.	पू. पूण्यविजयजी म.सा.	164
058	सिद्धान्तलक्षणगूढार्थ तत्त्वलोकः	सं	श्री धर्मदत्तसूरि	202
059	व्याप्ति पञ्चक विवृत्ति टीका	सं	श्री धर्मदत्तसूरि	48
060	જૈન સંગીત રાગમાળા	ગુ.	श्री मांगरोळ जैन संगीत मंडळी	306
061	चतुर्विंशतीप्रबन्ध (प्रबंध कोश)	सं	श्री रसिकलाल एच. कापडीआ	322
062	व्युत्पत्तिवाद आदर्श व्याख्यया संपूर्ण ६ अध्याय	सं	श्री सुदर्शनाचार्य	668
063	चन्द्रप्रभा हेमकौमुदी	सं	पू. मेघविजयजी गणि	516
064	विवेक विलास	सं/ગુ.	श्री दामोदर गोविंदाचार्य	268
065	पञ्चशती प्रबोध प्रबंध	सं	पू. मृगेन्द्रविजयजी म.सा.	456
066	सन्मतितत्त्वसोपानम्	सं	पू. लब्धिसूरिजी म.सा.	420
067	ઉપદેશમાલા દોઘટ્ટી ટીકા ગુર્જરાનુવાદ	ગુજ.	पू. हेमसागरसूरिजी म.सा.	638
068	मोहराजापराजयम्	सं	पू. चतुरविजयजी म.सा.	192
069	क्रियाकोश	सं/हिं	श्री मोहनलाल बांठिया	428
070	कालिकाचार्यकथासंग्रह	सं/ગુ.	श्री अंबालाल प्रेमचंद	406
071	सामान्यनिरुक्ति चंद्रकला कलाविलास टीका	सं.	श्री वामाचरण भट्टाचार्य	308
072	जन्मसमुद्रजातक	सं/हिं	श्री भगवानदास जैन	128
073	मेघमहोदय वर्षप्रबोध	सं/हिं	श्री भगवानदास जैन	532
074	જૈન સામુદ્રિકનાં પાંચ ગ્રંથો	ગુજ.	श्री हिम्मतराम महाशंकर जानी	376

075	જૈન ચિત્ર કલ્પદ્રૂમ ભાગ-૧	ગુજ.	**श्री साराभाई नवाब**	**374**
076	જૈન ચિત્ર કલ્પદ્રૂમ ભાગ-૨	ગુજ.	**श्री साराभाई नवाब**	**238**
077	સંગીત નાટ્ય રૂપાવલી	ગુજ.	**श्री विद्या साराभाई नवाब**	**194**
078	ભારતનાં જૈન તીર્થો અને તેનું શિલ્પસ્થાપત્ય	ગુજ.	**श्री साराभाई नवाब**	**192**
079	શિલ્પ ચિન્તામણિ ભાગ-૧	ગુજ.	**श्री मनसुखलाल भुदरमल**	**254**
080	બૃહદ્ શિલ્પ શાસ્ત્ર ભાગ-૧	ગુજ.	**श्री जगन्नाथ अंबाराम**	**260**
081	બૃહદ્ શિલ્પ શાસ્ત્ર ભાગ-૨	ગુજ.	**श्री जगन्नाथ अंबाराम**	**238**
082	બૃહદ્ શિલ્પ શાસ્ત્ર ભાગ-૩	ગુજ.	**श्री जगन्नाथ अंबाराम**	**260**
083	આયુર્વેદના અનુભૂત પ્રયોગો ભાગ-૧	ગુજ.	**पू. कान्तिसागरजी**	**114**
084	કલ્યાણ કારક	ગુજ.	**श्री वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री**	**910**
085	**विश्वलोचन कोश**	**सं./हिं**	**श्री नंदलाल शर्मा**	**436**
086	કથા રત્ન કોશ ભાગ-1	ગુજ.	**श्री बेचरदास जीवराज दोशी**	**336**
087	કથા રત્ન કોશ ભાગ-2	ગુજ.	**श्री बेचरदास जीवराज दोशी**	**230**
088	હસ્તસઞ્જીવનમ્	સં.	**पू. मेघविजयजीगणि**	**322**
089	ઐન્દ્રચતુર્વિંશતિકા	સં.	**पू.यशोविजयजी, पू. पुण्यविजयजी**	**114**
090	સમ્મતિ તર્ક મહાર્ણવાવતારિકા	સં.	**आचार्य श्री विजयदर्शनसूरिजी**	**560**

श्री आशापूरण पार्श्वनाथ जैन ज्ञानभंडार

संयोजक – शाह बाबुलाल सरेमल - (मो.) 9426585904 (ओ.) 22132543 - ahoshrut.bs@gmail.com
शाह वीमळाबेन सरेमल जवेरचंदजी बेडावाळा भवन
हीराजैन सोसायटी, रामनगर, साबरमती, अमदावाद-05.

अहो श्रुतज्ञानम् ग्रंथ जीर्णोद्धार – संवत २०६७ (ई. 2011) सेट नं.-३

प्रायः अप्राप्य प्राचीन पुस्तकों की स्कैन डीवीडी बनाई उसकी सूची। *यह पुस्तके www.ahoshrut.org वेबसाइट से भी डाउनलोड कर सकते हैं।*

क्रम	पुस्तक नाम	कर्त्ता / टीकाकार	भाषा	संपादक / प्रकाशक	पृष्ठ
91	स्याद्वाद रत्नाकर भाग-१	वादिदेवसूरिजी	सं.	मोतीलाल लाघाजी पुना	272
92	स्याद्वाद रत्नाकर भाग-२	वादिदेवसूरिजी	सं.	मोतीलाल लाघाजी पुना	240
93	स्याद्वाद रत्नाकर भाग-३	वादिदेवसूरिजी	सं.	मोतीलाल लाघाजी पुना	254
94	स्याद्वाद रत्नाकर भाग-४	वादिदेवसूरिजी	सं.	मोतीलाल लाघाजी पुना	282
95	स्याद्वाद रत्नाकर भाग-५	वादिदेवसूरिजी	सं.	मोतीलाल लाघाजी पुना	118
96	पवित्र कल्पसूत्र	पुण्यविजयजी	सं./अं	साराभाई नवाब	466
97	समराङ्गण सूत्रधार भाग-१	भोजदेव	सं.	टी. गणपति शास्त्री	342
98	समराङ्गण सूत्रधार भाग-२	भोजदेव	सं.	टी. गणपति शास्त्री	362
99	भुवनदीपक	पद्मप्रभसूरिजी	सं.	वेंकटेश प्रेस	134
100	गाथासहस्त्री	समयसुंदरजी	सं.	सुखलालजी	70
101	भारतीय प्राचीन लिपीमाला	गौरीशंकर ओझा	हिन्दी	मुन्शीराम मनोहरराम	316
102	शब्दरत्नाकर	साधुसुन्दरजी	सं.	हरगोविन्ददास बेचरदास	224
103	सुबोधवाणी प्रकाश	न्यायविजयजी	सं./गु	हेमचंद्राचार्य जैन सभा	612
104	लघु प्रबंध संग्रह	जयंत पी. ठाकर	सं.	ओरीएन्ट इन्स्टीट्युट बरोडा	307
105	जैन स्तोत्र संचय-१-२-३	माणिक्यसागरसूरिजी	सं,	आगमोद्धारक सभा	250
106	सन्मति तर्क प्रकरण भाग-१,२,३	सिद्धसेन दिवाकर	सं.	सुखलाल संघवी	514
107	सन्मति तर्क प्रकरण भाग-४,५	सिद्धसेन दिवाकर	सं.	सुखलाल संघवी	454
108	न्यायसार – न्यायतात्पर्यदीपिका	सतिषचंद्र विद्याभूषण	सं.	एसियाटीक सोसायटी	354
109	जैन लेख संग्रह भाग-१	पुरणचंद्र नाहर	सं./हि	पुरणचंद्र नाहर	337
110	जैन लेख संग्रह भाग-२	पुरणचंद्र नाहर	सं./हि	पुरणचंद्र नाहर	354
111	जैन लेख संग्रह भाग-३	पुरणचंद्र नाहर	सं./हि	पुरणचंद्र नाहर	372
112	जैन धातु प्रतिमा लेख भाग-१	कांतिविजयजी	सं./हि	जिनदत्तसूरि ज्ञानभंडार	142
113	जैन प्रतिमा लेख संग्रह	दौलतसिंह लोढा	सं./हि	अरविन्द धामणिया	336
114	राधनपुर प्रतिमा लेख संदोह	विशालविजयजी	सं./गु	यशोविजयजी ग्रंथमाळा	364
115	प्राचिन लेख संग्रह-१	विजयधर्मसूरिजी	सं./गु	यशोविजयजी ग्रंथमाळा	218
116	बीकानेर जैन लेख संग्रह	अगरचंद नाहटा	सं./हि	नाहटा ब्रधर्स	656
117	प्राचीन जैन लेख संग्रह भाग-१	जिनविजयजी	सं./हि	जैन आत्मानंद सभा	122
118	प्राचिन जैन लेख संग्रह भाग-२	जिनविजयजी	सं./हि	जैन आत्मानंद सभा	764
119	गुजरातना ऐतिहासिक लेखो-१	गिरजाशंकर शास्त्री	सं./गु	फार्बस गुजराती सभा	404
120	गुजरातना ऐतिहासिक लेखो-२	गिरजाशंकर शास्त्री	सं./गु	फार्बस गुजराती सभा	404
121	गुजरातना ऐतिहासिक लेखो-३	गिरजाशंकर शास्त्री	सं./गु	फार्बस गुजराती सभा	540
122	ऑपरेशन इन सर्च ऑफ संस्कृत मेन्यु. इन मुंबई सर्कल-१	पी. पीटरसन	अं.	रॉयल एशियाटीक जर्नल	274
123	ऑपरेशन इन सर्च ऑफ संस्कृत मेन्यु. इन मुंबई सर्कल-४	पी. पीटरसन	अं.	रॉयल एशियाटीक जर्नल	414
124	ऑपरेशन इन सर्च ऑफ संस्कृत मेन्यु. इन मुंबई सर्कल-५	पी. पीटरसन	अं.	रॉयल एशियाटीक जर्नल	400
125	कलेक्शन ऑफ प्राकृत एन्ड संस्कृत इन्स्क्रीप्शन्स	पी. पीटरसन	अं.	भावनगर आर्चीऑलॉजीकल डिपा.	320
126	विजयदेव माहात्म्यम्	जिनविजयजी	सं.	जैन सत्य संशोधक	148

श्री आशापूरण पार्श्वनाथ जैन ज्ञानभंडार

संयोजक – शाह बाबुलाल सरेमल - (मो.) 9426585904 (ओ.) 22132543 - ahoshrut.bs@gmail.com
शाह वीमळाबेन सरेमल जवेरचंदजी बेडावाळा भवन
हीराजैन सोसायटी, रामनगर, साबरमती, अमदावाद-05.

अहो श्रुतज्ञानम् ग्रंथ जीर्णोद्धार – संवत २०६८ (ई. 2012) सेट नं.-४

प्रायः अप्राप्य प्राचीन पुस्तकों की स्केन डीवीडी बनाई उसकी सूची। *यह पुस्तके www.ahoshrut.org वेबसाइट से भी डाउनलोड कर सकते हैं।*

क्रम	पुस्तक नाम	कर्त्ता / संपादक	भाषा	प्रकाशक	पृष्ठ
127	महाप्रभाविक नवस्मरण	साराभाई नवाब	गुज.	साराभाई नवाब	754
128	जैन चित्र कल्पलता	साराभाई नवाब	गुज.	साराभाई नवाब	84
129	जैन धर्मनो प्राचीन इतिहास भाग-२	हीरालाल हंसराज	गुज.	हीरालाल हंसराज	194
130	ओपरेशन इन सर्च ओफ सं. मेन्यु. भाग-६	पी. पीटरसन	अंग्रेजी	एशियाटीक सोसायटी	171
131	जैन गणित विचार	कुंवरजी आणंदजी	गुज.	जैन धर्म प्रसारक सभा	90
132	दैवज्ञ कामधेनु (प्राचिन ज्योतिष ग्रंथ)	शील खंड	सं.	ब्रज. बी. दास बनारस	310
133	करण प्रकाशः	ब्रह्मदेव	सं./अं.	सुधाकर द्विवेदि	276
134	न्यायविशारद महो. यशोविजयजी स्वहस्तलिखित कृति संग्रह	यशोदेवसूरिजी	गुज.	यशोभारती प्रकाशन	69
135	भौगोलिक कोश-१	डाह्याभाई पीतांबरदास	गुज.	गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी	100
136	भौगोलिक कोश-२	डाह्याभाई पीतांबरदास	गुज.	गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी	136
137	जैन साहित्य संशोधक वर्ष-१ अंक-१, २	जिनविजयजी	हिन्दी	जैन साहित्य संशोधक पुना	266
138	जैन साहित्य संशोधक वर्ष-१ अंक-३, ४	जिनविजयजी	हिन्दी	जैन साहित्य संशोधक पुना	244
139	जैन साहित्य संशोधक वर्ष-२ अंक-१, २	जिनविजयजी	हिन्दी	जैन साहित्य संशोधक पुना	274
140	जैन साहित्य संशोधक वर्ष-२ अंक-३, ४	जिनविजयजी	हिन्दी	जैन साहित्य संशोधक पुना	168
141	जैन साहित्य संशोधक वर्ष-३ अंक-१, २	जिनविजयजी	हिन्दी	जैन साहित्य संशोधक पुना	282
142	जैन साहित्य संशोधक वर्ष-३ अंक-३, ४	जिनविजयजी	हिन्दी	जैन साहित्य संशोधक पुना	182
143	नवपदोनी आनुपूर्वी भाग-१	सोमविजयजी	गुज.	शाह बाबुलाल सवचंद	384
144	नवपदोनी आनुपूर्वी भाग-२	सोमविजयजी	गुज.	शाह बाबुलाल सवचंद	376
145	नवपदोनी आनुपूर्वी भाग-३	सोमविजयजी	गुज.	शाह बाबुलाल सवचंद	387
146	भाषवति	शतानंद मारछता	सं./हि	एच.बी. गुप्ता एन्ड सन्स बनारस	174
147	जैन सिद्धांत कौमुदी (अर्धमागधी व्याकरण)	रत्नचंद्र स्वामी	प्रा./सं.	भैरोदान सेठीया	320
148	मंत्रराज गुणकल्प महोदधि	जयदयाल शर्मा	हिन्दी	जयदयाल शर्मा	286
149	फक्कीका रत्नमंजूषा-१, २	कनकलाल ठाकूर	सं.	हरिकृष्ण निबंध	272
150	अनुभूत सिद्ध विशायंत्र (छ कल्प संग्रह)	मेघविजयजी	सं./गुज	महावीर ग्रंथमाळा	142
151	सारावलि	कल्याण वर्धन	सं.	पांडुरंग जीवाजी	260
152	ज्योतिष सिद्धांत संग्रह	विश्वेश्वरप्रसाद द्विवेदी	सं.	ब्रीजभूषणदास बनारस	232
153	ज्ञान प्रदीपिका तथा सामुद्रिक शास्त्रम्	रामव्यास पान्डेय	सं.	जैन सिद्धांत भवन	160
	नूतन संकलन				
१	आ. चंद्रसागरसूरिजी ज्ञानभंडार – उज्जैन	हस्तप्रत सूचीपत्र	हिन्दी	श्री आशापुरण पार्श्वनाथ जैन ज्ञानभंडार	
२	श्री गुजराती श्वे.मू. जैन संघ-हस्तप्रत भंडार – कलकत्ता	हस्तप्रत सूचीपत्र	हिन्दी	श्री आशापुरण पार्श्वनाथ जैन ज्ञानभंडार	

श्री आशापूरण पार्श्वनाथ जैन ज्ञानभंडार

संयोजक – शाह बाबुलाल सरेमल - (मो.) 9426585904 (ओ.) 22132543 - ahoshrut.bs@gmail.com
शाह वीमळाबेन सरेमल जवेरचंदजी बेडावाळा भवन
हीराजैन सोसायटी, रामनगर, साबरमती, अमदावाद-05.

अहो श्रुतज्ञानम् ग्रंथ जीर्णोद्धार – संवत २०६९ (ई. 2013) सेट नं.-५

प्रायः अप्राप्य प्राचीन पुस्तकों की स्केन डीवीडी बनाई उसकी सूची। *यह पुस्तके www.ahoshrut.org वेबसाइट से भी डाउनलोड कर सकते हैं।*

क्रम	पुस्तक नाम	कर्त्ता / संपादक	विषय	भाषा	संपादक / प्रकाशक	पृष्ठ
154	उणादि सूत्रो ओफ हेमचंद्राचार्य	पू. हेमचंद्राचार्य	व्याकरण	संस्कृत	जोहन क्रिष्टे	304
155	उणादि गण विवृत्ति	पू. हेमचंद्राचार्य	व्याकरण	संस्कृत	पू. मनोहरविजयजी	122
156	प्राकृत प्रकाश-सटीक	भामाह	व्याकरण	प्राकृत	जय कृष्णदास गुप्ता	208
157	द्रव्य परिक्षा और धातु उत्पत्ति	ठक्कर फेरू	धातु	संस्कृत /हिन्दी	भंवरलाल नाहटा	70
158	आरम्भसिध्धि – सटीक	पू. उदयप्रभदेवसूरिजी	ज्योतीष	संस्कृत	पू. जितेन्द्रविजयजी	310
159	खंडहरो का वैभव	पू. कान्तीसागरजी	शील्प	हिन्दी	भारतीय ज्ञानपीठ	462
160	बालभारत	पू. अमरचंद्रसूरिजी	काव्य	संस्कृत	पं. शीवदत्त	512
161	गिरनार माहात्म्य	दौलतचंद परषोत्तमदास	तीर्थ	संस्कृत /गुजराती	जैन पत्र	264
162	गिरनार गल्प	पू. ललितविजयजी	तीर्थ	संस्कृत/गुजराती	हंसकविजय फ्री लायब्रेरी	144
163	प्रश्नोत्तर सार्ध शतक	पू. क्षमाकल्याणविजयजी	प्रकरण	हिन्दी	साध्वीजी विचक्षणाश्रीजी	256
164	भारतिय संपादन शास्त्र	मूलराज जैन	साहित्य	हिन्दी	जैन विद्याभवन, लाहोर	75
165	विभक्त्यर्थ निर्णय	गिरिधर झा	न्याय	संस्कृत	चौखम्बा प्रकाशन	488
166	व्योम वती-१	शिवाचार्य	न्याय	संस्कृत	संपूर्णानंद संस्कृत युनिवर्सिटी	226
167	व्योम वती-२	शिवाचार्य	न्याय	संस्कृत	संपूर्णानंद संस्कृत विद्यालय	365
168	जैन न्यायखंड खाद्यम्	उपा. यशोविजयजी	न्याय	संस्कृत /हिन्दी	बद्रीनाथ शुक्ल	190
169	हरितकाव्यादि निघंटू	भाव मिश्र	आयुर्वेद	संस्कृत /हिन्दी	शीव शर्मा	480
170	योग चिंतामणि-सटीक	पू. हर्षकीर्तिसूरिजी	आयुर्वेद	संस्कृत /हिन्दी	लक्ष्मी वेंकटेश प्रेस	352
171	वसंतराज शकुनम्	पू. भानुचन्द्र गणि टीका	ज्योतिष	संस्कृत	खेमराज कृष्णदास	596
172	महाविद्या विडंबना	पू. भुवनसुन्दरसूरि टीका	ज्योतिष	संस्कृत	सेन्ट्रल लायब्रेरी	250
173	ज्योतिर्निबन्ध	शिवराज	ज्योतिष	संस्कृत	आनंद आश्रम	391
174	मेघमाला विचार	पू. विजयप्रभसूरिजी	ज्योतिष	संस्कृत/गुजराती	मेघजी हीरजी	114
175	मुहूर्त चिंतामणि-सटीक	रामकृत प्रमिताक्षय टीका	ज्योतिष	संस्कृत	अनूप मिश्र	238
176	मानसोल्लास सटीक-१	भुलाकमल्ल सोमेश्वर	ज्योतिष	संस्कृत	ओरिएन्ट इन्स्टीट्यूट	166
177	मानसोल्लास सटीक-२	भुलाकमल्ल सोमेश्वर	ज्योतिष	संस्कृत	ओरिएन्ट इन्स्टीट्यूट	368
178	ज्योतिष सार प्राकृत	भगवानदास जैन	ज्योतिष	प्राकृत/हिन्दी	भगवानदास जैन	88
179	मुहूर्त संग्रह	अंबालाल शर्मा	ज्योतिष	गुजराती	शास्त्री जगन्नाथ परशुराम द्विवेदी	356
180	हिन्दु एस्ट्रोलोजी	पिताम्बरदास त्रीभोवनदास	ज्योतिष	गुजराती	पिताम्बरदास टी. महेता	168

श्री आशापूरण पार्श्वनाथ जैन ज्ञानभंडार

संयोजक – शाह बाबुलाल सरेमल - (मो.) 9426585904 (ओ.) 22132543. E-mail : ahoshrut.bs@gmail.com
शाह विमळाबेन सरेमल जवेरचंदजी बेडावाळा भवन
हीराजैन सोसायटी, रामनगर, साबरमती, अमदावाद-380005.

अहो श्रुतज्ञानम् ग्रंथ जीर्णोद्धार – संवत २०७१ (ई. 2015) सेट नं.-६

प्रायः अप्राप्य प्राचीन पुस्तकों की डिजिटाइझेशन द्वारा डीवीडी बनाई उसकी सूची।
यह पुस्तके www.ahoshrut.org वेबसाइट से भी डाउनलोड कर सकते हैं।

क्रम	पुस्तक नाम	कर्त्ता / टिकाकार	विषय	भाषा	संपादक / प्रकाशक	पृष्ठ
181	काव्यप्रकाश भाग-१	पूज्य मम्मटाचार्य कृत		संस्कृत	पूज्य जिनविजयजी	364
182	काव्यप्रकाश भाग-२	पूज्य मम्मटाचार्य कृत		संस्कृत	पूज्य जिनविजयजी	222
183	काव्यप्रकाश उल्लास-२ अने ३	उपा. यशोविजयजी		संस्कृत	यशोभारति जैन प्रकाशन समिति	330
184	नृत्यरत्न कोश भाग-१	श्री कुम्भकर्ण नृपति		संस्कृत	श्री रसीकलाल छोटालाल	156
185	नृत्यरत्न कोश भाग-२	श्री कुम्भकर्ण नृपति		संस्कृत	श्री रसीकलाल छोटालाल	248
186	नृत्याध्याय	श्री अशोकमलजी		संस्कृत /हिन्दी	श्री वाचस्पति गैरोभा	504
187	संगीरत्नाकर भाग-१ सटीक	श्री सारंगदेव		संस्कृत/अंग्रेजी	श्री सुब्रमण्यम शास्त्री	448
188	संगीरत्नाकर भाग-२ सटीक	श्री सारंगदेव		संस्कृत/अंग्रेजी	श्री सुब्रमण्यम शास्त्री	444
189	संगीरत्नाकर भाग-३ सटीक	श्री सारंगदेव		संस्कृत/अंग्रेजी	श्री सुब्रमण्यम शास्त्री	616
190	संगीरत्नाकर भाग-४ सटीक	श्री सारंगदेव		संस्कृत/अंग्रेजी	श्री सुब्रमण्यम शास्त्री	632
191	संगीत मकरन्द	नारद		संस्कृत	श्री मंगेश रामकृष्ण तेलंग	84
192	संगीत नृत्य अने नाट्य संबंधी जैन ग्रंथो	श्री हीरालाल कापडीया		गुजराती	मुक्ति-कमल-जैन मोहन ग्रंथमाला	244
193	न्यायबिंदु सटीक	पूज्य धर्मोतराचार्य		संस्कृत	श्री चंद्रशेखर शास्त्री	220
194	शीघ्रबोध भाग-१ थी ५	पूज्य ज्ञानसुन्दरजी		हिन्दी	सुखसागर ज्ञान प्रसारक सभा	422
195	शीघ्रबोध भाग-६ थी १०	पूज्य ज्ञानसुन्दरजी		हिन्दी	सुखसागर ज्ञान प्रसारक सभा	304
196	शीघ्रबोध भाग-११ थी १५	पूज्य ज्ञानसुन्दरजी		हिन्दी	सुखसागर ज्ञान प्रसारक सभा	446
197	शीघ्रबोध भाग-१६ थी २०	पूज्य ज्ञानसुन्दरजी		हिन्दी	सुखसागर ज्ञान प्रसारक सभा	414
198	शीघ्रबोध भाग-२१ थी २५	पूज्य ज्ञानसुन्दरजी		हिन्दी	सुखसागर ज्ञान प्रसारक सभा	409
199	अध्यात्मसार सटीक	पूज्य गंभीरविजयजी		संस्कृत/गुजराती	नरोत्तमदास भानजी	476
200	छन्दोनुशासन	एच. डी. वेलनकर		संस्कृत	सिंघी जैन शास्त्र शिक्षापीठ	444
201	मग्गानुसारिया	श्री डी. एस शाह		संस्कृत/गुजराती	ज्ञातपुत्र भगवान महावीर ट्रस्ट	146

श्री आशापूरण पार्श्वनाथ जैन ज्ञानभंडार

संयोजक – शाह बाबुलाल सरेमल - (मो.) 9426585904 (ओ.) 22132543. E-mail : ahoshrut.bs@gmail.com
शाह विमळाबेन सरेमल जवेरचंदजी बेडावाळा भवन
हीराजैन सोसायटी, रामनगर, साबरमती, अमदावाद-380005.

अहो श्रुतज्ञानम् ग्रंथ जीर्णोद्धार – संवत २०७२ (ई. 201६) सेट नं.-७

प्रायः अप्राप्य प्राचीन पुस्तकों की डिजिटाइझेशन द्वारा डीवीडी बनाई उसकी सूची।

क्रम	पुस्तक नाम	कर्त्ता / टिकाकार	भाषा	संपादक / प्रकाशक	पृष्ठ
202	आचारांग सूत्र भाग-१ निर्युक्ति+टीका	श्री शीलंकाचार्य	गुजराती	श्री माणेक मुनि	285
203	आचारांग सूत्र भाग-२ निर्युक्ति+टीका	श्री शीलंकाचार्य	गुजराती	श्री माणेक मुनि	280
204	आचारांग सूत्र भाग-३ निर्युक्ति+टीका	श्री शीलंकाचार्य	गुजराती	श्री माणेक मुनि	315
205	आचारांग सूत्र भाग-४ निर्युक्ति+टीका	श्री शीलंकाचार्य	गुजराती	श्री माणेक मुनि	307
206	आचारांग सूत्र भाग-५ निर्युक्ति+टीका	श्री शीलंकाचार्य	गुजराती	श्री माणेक मुनि	361
207	सुयगडांग सूत्र भाग-१ सटीक	श्री शीलंकाचार्य	गुजराती	श्री माणेक मुनि	301
208	सुयगडांग सूत्र भाग-२ सटीक	श्री शीलंकाचार्य	गुजराती	श्री माणेक मुनि	263
209	सुयगडांग सूत्र भाग-३ सटीक	श्री शीलंकाचार्य	गुजराती	श्री माणेक मुनि	395
210	सुयगडांग सूत्र भाग-४ सटीक	श्री शीलंकाचार्य	गुजराती	श्री माणेक मुनि	386
211	सुयगडांग सूत्र भाग-५ सटीक	श्री शीलंकाचार्य	गुजराती	श्री माणेक मुनि	351
212	रायपसेणिय सूत्र	श्री मलयगिरि	गुजराती	श्री बेचरदास दोशी	260
213	प्राचीन तीर्थमाळा भाग-१	आ.श्री धर्मसूरि	सं./गुजराती	श्री यशोविजयजी ग्रंथमाळा	272
214	धातु पारायणम्	श्री हेमचंद्राचार्य	संस्कृत	आ. श्री मुनिचंद्रसूरि	530
215	सिद्धहेम शब्दानुशासन लघुवृत्ति भाग-१	श्री हेमचंद्राचार्य	सं./गुजराती	श्री बेचरदास दोशी	648
216	सिद्धहेम शब्दानुशासन लघुवृत्ति भाग-२	श्री हेमचंद्राचार्य	सं./गुजराती	श्री बेचरदास दोशी	510
217	सिद्धहेम शब्दानुशासन लघुवृत्ति भाग-३	श्री हेमचंद्राचार्य	सं./गुजराती	श्री बेचरदास दोशी	560
218	तार्किक रक्षा सार संग्रह	आ. श्री वरदराज	संस्कृत	राजकीय संस्कृत पुस्तकालय	427
219	वादार्थ संग्रह भाग-१ (स्फोट तत्त्व निरूपण, स्फोट चन्द्रिका, प्रतिपादिक संज्ञावाद, वाक्यवाद, वाक्यदीपिका)	विविध कर्ता	संस्कृत	महादेव शर्मा	88
220	वादार्थ संग्रह भाग-२ (षट्कारक विवेचन, कारक वादार्थ, समासवादार्थ, वकारवादार्थ)	विविध कर्ता	संस्कृत	महादेव शर्मा	78
221	वादार्थ संग्रह भाग-३ (वादसुधाकर, लघुविभक्त्यर्थ निर्णय, शाब्दबोधप्रकाशिका)	विविध कर्ता	संस्कृत	महादेव शर्मा	112
222	वादार्थ संग्रह भाग-४ (आख्यात शक्तिवाद छः टीका)	रघुनाथ शिरोमणि	संस्कृत	महादेव शर्मा	228

VADARTHA SAMGRAHA

(VAD-SUDHAKAR, LAGHU-VIBHAKTI-ARTHA NIRNAYA,
AND SHABDA-BODHA PRAKASHIKA)

(**Third Part**)

EDITED BY

MAHADEVA GANGADHAR BAKRE

Registered under the Copyright Act

Printed and Published by Manilal Itcharam Desai at
THE GUJARATI PRINTING PRESS,
No. 8, SASSOON BUILDINGS, CIRCLE, FORT,
BOMBAY.

V. S. 1971. A. D. 1915

PRICE RE 0-8-0

वादार्थसंग्रहः

वादसुधाकरः, लघुविभक्त्यर्थनिर्णयः, शाब्दबोधप्रकाशिका च

(तृतीयो भागः)

बाक्रे इत्युपाह्वगङ्गाधरभट्टसुतमहादेवशर्मणा
संशोधितः ।

मुम्बय्यां

फोर्ट सर्कलाख्ये प्रविभागेऽष्टमसंख्याके सासूनभवने
'मणिलाल इच्छाराम देसाई' इत्यनेन स्वीये 'गुजराती'
मुद्रणयन्त्रालये मुद्रयित्वा तत्रैव प्रकाशितः ।

विक्रमसंवत् १९७१.   ख्रिस्ताब्दः १९१५.

मूल्यमष्टावाणकाः ।

वादार्थसंग्रहः ।

(तृतीयो भागः)

श्रीकृष्णाचार्यविरचितः

वादसुधाकरः १०

शाब्दे ब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥
इति वात्सल्यवान् बिभ्रत्तद्रूपं पातु माधवः ॥ १ ॥
कोलाहलोऽत्र कुधियां न प्रत्यूहो विवेकिनाम् ॥
कलिदोषो रमानाथदासमीष्टे न वीक्षितुम् ॥ २ ॥

आख्यातार्थधात्वर्थनिर्णयः ।

आख्यातस्य कृतौ शक्तिर्न तु कर्तरि कृत्याश्रयत्वमेव हि कर्तृत्वं, तच्च कृतिरूपमित्यनन्तकृतीनां शक्यतावच्छेदकत्वे गौरवादिति तार्किकाः । नचैवं रथो गच्छतीत्यादावचेतने रथे कृतेर्बाधादाश्रयत्वादौ लक्षणायां लक्ष्यतावच्छेदकगौरवेण साम्यमिति वाच्यम् । अतिरिक्तशक्तिकल्पनापेक्षया क्लृप्तायां शक्यसंबन्धरूपलक्षणायां गौरवाभावात् । ननु लक्षणाश्रयणे कथं वर्तमानत्वादीनामन्वयः युगपद्वृत्तिद्वयाऽनभ्युपगमादिति-चेन्न । शक्ततावच्छेदकलक्षकतावछेदकयोर्भेदात् । लट्त्वेन हि वर्तमानत्वे शक्तिः । लकारत्वेन लक्षणेति । अत एव सकृदुच्चरित इति न्यायात्कथं कृतिवर्तमानत्वयोर्युगपद्बोध इत्यपि नाशङ्क्यम् । लकारत्वलट्त्वरूपशक्ततावच्छेदकभेदात् । ननु तथापि लक्षणाज्ञानजन्याश्रयत्वाद्युपस्थितेः पृथक् हेतुत्वकल्पने गौरवमिति चेन्न, तद्विषयकशाब्दबोधं प्रति तद्विषयकवृत्तिज्ञानजन्योपस्थितित्वेनैव हेतुतया लक्षणाज्ञानस्य पृथग्धेतुत्वाऽभावात् । घटपदात्समवायेनाकाशस्मरणे तच्छाब्दबोधवारणाय वृत्तिज्ञानेति विशेषणम् ।

अथैवमनुकूलत्वादीनां संसर्गाणां शाब्दबोधविषयत्वं दुर्लभमिति चेन्न, घटपदादुपस्थितस्य घटत्वस्य विशेष्यतयाऽन्वयवारणाय तद्धर्मप्रकारकतद्विशेष्यकशाब्दबोधं प्रति तद्धर्मप्रकारकतद्विशेष्यकवृत्तिज्ञानजन्योप-

स्थितेर्हेतुत्वावश्यकतया संसर्गस्य तत्रप्रकारत्वाभावेनादोषात् । स्यादेतत्, वृत्त्यनुपस्थितस्यापि संसर्गस्य शाब्दबोधविषयत्वे राजपुरुष इत्यादौ यावत्संबन्धभानापत्तिः जन्यजनकभावादेरपि संभवादिति चेन्न, तात्पर्यस्य नियामकत्वात् ।

अत्रेदमवधेयम्—आख्यातस्य कर्तृवाचकत्वाभावे पच्यते तण्डुलेनेत्यादौ ‘कर्मवत्कर्मणा तुल्यक्रियः’ इत्यतिदेशात्कर्मणि द्वितीयापत्तिः । वैयाकरणानां तु लिङ्याशिष्यङिति द्विलकारकाल इत्यनुवृत्तेर्लकारवाच्यः कर्ता कर्मवदित्यर्थान्नातिप्रसङ्गः । भावे लकारे च लकारेण कर्तुरनुपस्थितेः । एवं भेत्तव्यं कुसूलेनेत्यत्रापि कर्मवत्कर्मणेति कर्मवद्भावे (भावे) प्रत्ययानापत्तिः । अस्मन्मते च लकारवाच्यस्यैव कर्तुः कर्मवद्भावात्कृति कर्तुः कर्मवत्त्वाभावेनोक्तदोषभावः । नच लकारवाच्यकृत्याश्रयः कर्ता कर्मवदित्यर्थान्निस्तारः शङ्क्यः लकारस्य तत्र विक्लित्त्याश्रयत्ववाचकत्वेन कृतिवाचकत्वाभावात्, तदाश्रयत्वस्याप्यसंभवाच्च । नच लकारार्थसंख्याश्रयः कर्मकर्ता कर्मवदित्यर्थ इति वाच्यम्, पच्यमानस्तण्डुल इत्यादौ लकारेण संख्याया अनुपस्थित्या कर्मवद्भावानापत्तेः । अत एव लकारार्थकर्तृत्वाश्रयः कर्ता कर्मवदित्यर्थेऽप्यत्र न निर्वाहः वाचनिकातिरिक्तवचनारम्भस्यैव गुरुत्वात् ।

किंच लक्षणायाः शक्यानुसंधानपूर्वकत्वाल्लक्षणायां लाघवं निर्युक्तिकमेव । अत एव निषादस्थपतिं याजयेदित्यत्र निषादश्चासौ स्थपतिश्चेति कर्मधारयो न तु निषादानां स्थपतिरिति तत्पुरुषः पूर्वपदे लक्षणाप्रसङ्गादिति सकलसिद्धान्तः । अत एव राजपुरोहितौ स्वाराज्यकामौ यजेयातामित्यत्र राजा च पुरोहितश्चेति द्वन्द्वो नतु राज्ञः पुरोहिताविति तत्पुरुषो लक्षणाप्रसङ्गादिति सर्वसिद्धान्तः । अत एवोद्भिदा यजेत पशुकाम इत्यत्रोद्भिच्छब्दः कर्मनामधेयमुद्भिच्छब्देन खनित्रादिकं गृहीत्वोद्भिद्वता यागेनेत्यर्थाश्रयणे तु मत्वर्थलक्षणापत्तिरिति उद्भिदधिकरणं संगच्छते ।

वस्तुतस्तु फलव्यापारयोरुभयोर्धातुलभ्यत्वादखण्डशक्तिरूपमाश्रयत्वमेवाख्यातशक्यतावच्छेदकमिति न गौरवसंभावना । तार्किकपरिभाषया यत्नत्वस्येव शाब्दिकपरिभाषया आश्रयत्वस्याप्यतिरिक्तत्वे बाधकाभावात् । कुमारीभार्य इत्यादौ जातेश्चेति पुंवद्भावप्रतिषेधसिद्धये कौमारादीनामपि जातित्वमभ्युपगच्छतां भाष्यकारादीनां नित्यैव जातिरिति नियमात् । अत एव दीधितिकृताऽपि सिद्धान्तलक्षणेऽधिकरणत्वादीनामतिरि-

क्तत्वं स्वीकृतं तस्य हि अधिकरणस्वरूपत्वे आधेयस्वरूपत्वे वा परस्परासंयुक्तघटभूतलसत्त्वेऽपीदानीं भूतलं घटवदिति प्रत्ययप्रसङ्ग इति विस्तरस्तत्रैव । किंचाश्रयत्वं नित्यमेवास्तु उत्पादविनाशव्यवहारस्तु निरूपितत्वाद्युत्पत्त्यादिकमादायैवास्तु वायुत्वरूपयोः समवायस्यैकत्वेऽपि रूपनिरूपितत्वाभावेन वायौ रूपवत्ताप्रतीत्यभाववत् ।

किंच लकारस्य यत्नार्थत्वे पचन्तं चैत्रं पश्येत्यादावपि यत्नमात्रबोधापत्तिः । तथाचानन्वयः । नहि तत्र यत्नस्याश्रयतासंबन्धेनान्वयः संभवति नामार्थयोरभेद इति नियमात् । नच तत्र शत्रादीनां कर्तरि शक्तिः शक्त्या स्थानिनामेव तार्किकमते वाचकत्वात् स्थान्यर्थेन निराकाङ्क्षतया 'कर्तरि कृत्' इत्यस्य तत्रानुपस्थितेः । अन्यथा पच्यमान इत्यत्रापि तदापत्तेः । अथ पचन्तमित्यादौ लकारस्य कर्तरि लक्षणेति चेत्सत्यं, पाकपदादीनां तद्वति लक्षणया पाको देवदत्त इत्यादेरप्यापत्तेः । किंच लाक्षणिकं नानुभावकं लाक्षणिकार्थस्य बोधे पदान्तरसमभिव्याहारः कारणमिति तार्किकसिद्धान्तात्स्वादिसमभिव्याहारस्य तादृशबोधं प्रति हेतुत्वकल्पने पचमानः पच्यमान इत्यनयोर्वैलक्षण्यानापत्तिः यत्तु किं करोतीत्यत्र किंविषयको यत्न इत्येवं यत्नार्थककरोतिना प्रश्ने पचतीत्युत्तरदर्शनादाख्यातस्य यत्नार्थत्वमिति, तत्र कृञो यत्नार्थत्वे यतिवदकर्मकत्वापत्तेः । किंच यत्नमात्रार्थत्वे क्रियते घटः स्वयमेवेत्यादौ कर्मवद्भावानापत्तौ यगाद्यनापत्तेः । कर्मावस्थायां या क्रिया सा कर्त्रवस्थायां चेत्तदैव 'कर्मवत्कर्मणा तुल्यक्रियः' इत्यस्य प्रवृत्तेः । कृतिश्च न घटादिनिष्ठा । प्रश्नवाक्ये यत्नविशिष्टे जिज्ञासितसंबन्ध उत्तरे त्वाश्रयत्वादिविशिष्ट इति वैषम्यात् । एतेन पचति पाकं करोतीति यत्नार्थककरोतिना विवरणादाख्यातस्य यत्नोऽर्थ इत्यपास्तम् । उक्तरीत्या कृञो यत्नार्थत्वाभावात् ।

किंचाचेतने स्वरसतः कर्तृपदप्रयोगाभावात्कृञो यत्नार्थत्वमित्येव भवतामाग्रहः स चापार्थः । बीजादिनाऽङ्कुरः कृतो रथो गमनं करोतीत्यचेतनेऽपि कृञः प्रयोगात् । अत एव भवतामचेतने कर्तृपदप्रयोगः । अतएव पचतीत्युक्ते कः किंजातीय इति कर्तृविषयकप्रश्नानुभवः सार्वजनीनः । किंच लः कर्मणि चेति सूत्रे कर्तृशब्दस्य कर्तृत्वपरतया कर्तृत्वं कृतिरेवेति तद्विरोधपरिहारे कर्तरि कृदित्यत्रापि कृत्यर्थत्वापत्तेः । तत एव कर्तरीत्यस्यानुवृत्तेः शब्दाधिकाराश्रयणेऽपि क्लेश एव ।

अथ तत्र नामार्थयोरभेद इति नियमात् कर्तृवाचित्वमिति चेत् पचन् चैत्र इत्यादावपि लकारस्य कर्तृवाचकत्वापत्तिः । अभेदस्योभयत्र तुल्यत्वात् । कीदृशोऽत्रनियमः नामार्थयोरभेद एवेति अभेदो नामार्थयोरेव वेति । आद्ये राज्ञः सुतस्य धनमित्यादौ व्यभिचारः, द्वितीये तु स्तोकं पचतीत्यत्र । ननु नामार्थधात्वर्थयोर्नामार्थयोश्च साक्षाद्भेदान्वयो नेत्येव नियमः । राज्ञः सुतस्येत्यादौ विभक्त्यर्थसंबन्धद्वारान्वयो न स्यात् राजपुरुष इत्यत्र तु राजपदस्य राजसंबन्धिनि लक्षणयाऽभेद एव । प्राप्तोदकादावप्युदकपदस्योदककर्तृकप्राप्तिकर्मणि लक्षणा । उपकुम्भमित्यादौ कुम्भादिपदस्य कुम्भादिसमीपादौ, धवखदिरावित्यादौ तु द्वयोरपि प्रधानत्वेन परस्परं संबन्धाभावात् । एवं तर्हि पचतिकल्पमित्यादावुक्तव्युत्पत्तिबलादेव कर्तार्थोऽस्तु । नच तत्र नाम्नः समुदायस्यार्थ एव नास्तीति शङ्क्यम्, पाचक इत्यादावपि तन्मते समुदायार्थविरहात् । तस्मान्नामजन्यबोधविषयत्वमेव नामार्थत्वम् ।

किंच कर्तुरवाच्यत्वे पचति चैत्र इत्यादौ कर्तुरनभिधानात्तृतीयापत्तिः । अथायमाशयः—अभिहितसंख्याके कर्तरि तृतीया । तद्यथा कर्तृकरणयोर्द्व्येकयोरित्यादीनामेकवाक्यतयाऽनभिहिते कर्तृगतैकत्वे इत्यर्थ इति चेदेवं तर्हि 'कृष्टपच्या व्रीहयः' इत्यत्र कर्मकर्तरि कर्तृसंख्याभिधानाभावात्तृतीयापत्तिः । पाचको देवदत्त इत्यादौ कृत्तद्धितसमासेषु संख्याभिधानाभावेनागतेः ।

नन्वनभिहिते कर्तृत्वे इत्यर्थोऽस्तु अस्ति च पाचक इत्यादावपि विशेषणतया कृतेरभिधानमिति चेन्न । कृष्णस्य कृतिरित्यत्र कृतेरभिहितत्वेन कर्तरि षष्ठ्यनापत्तेः । तण्डुलः पच्यते स्वयमेवेत्यादौ तण्डुलपदात्तृतीयापत्तेः तत्रापि कृतेरनभिधानात् । सिद्धान्ते तु कर्तुरभिहितत्वात्तत्र प्रथमा । किंच धातुनैव कृतेरभिधानात् देवदत्तेन क्रियत इत्यत्र तृतीयानापत्तिः ।

आश्रयत्वं तृतीयार्थ इति तु दुर्वचमनुशासनाभावात् । नन्वाख्यातस्याश्रयार्थत्वे बीजाभावः देवदत्तादेराधेयतया पाकादावन्वयसंभवादिति चेन्न । नामार्थधात्वर्थयोः साक्षाद्भेदान्वयस्याव्युत्पन्नत्वात् । अन्यथा तण्डुलः पचतीत्यपि प्रयोगापत्तेः । कर्मतासंबन्धेन तण्डुलस्य पाकेऽन्वयसंभवात् । किंचाख्यातस्य कर्तृवाचित्वाभावे पचति चैत्र इत्यादावनुभवसिद्धस्य सामानाधिकरण्यस्यानुपपत्तिः । ततश्च पचन्ति चैत्र इति प्रयो -

गप्रसङ्गः । अस्मन्मते त्वभेदान्यथानुपपत्त्या न्यायसिद्धं समानवचनकत्वम् ।

अथ चैत्रादिगतसंख्याभिधायित्वमेव चैत्रादिसामानाधिकरण्यमिति चेदेतन्मते संख्यायाः कुत्रान्वय इत्यत्रैव नियामकाभावः । अत्राहुः— भावनान्वयिनि संख्यान्वयः भावनान्वययोग्यश्चेतराविशेषणीभूतप्रथमान्तपदोपस्थाप्यः चन्द्र इव मुखानि दृश्यन्त इत्यत्रेवार्थसादृश्यस्य विशेषणे चन्द्रे संख्यान्वयवारणाय इतरविशेषणेति । भावना च संख्याकालातिरिक्तप्रत्ययार्थ इति । अथ कथं न पचति चैत्र इत्यत्र भावना(न)न्वयिनि पाकानुकूलकृत्यभाववति चैत्रे संख्यान्वय इति चेन्न । भावनान्वययोग्यताया एव विवक्षितत्वात् । अत एव भावनान्वययोग्यश्चेत्युक्तम् । परे तु परंपरया भावनान्वयमूरीचक्रुः ।

अत्र वदन्ति । भावनान्वयिनि संख्यान्वये पचेतेत्यत्रेष्टसाधनत्वान्वितपाके संख्यान्वयापत्तिः इष्टसाधनत्वाद्यतिरिक्तत्वेन विशेषणे तु तदेव गौरवम् । यत्तूक्तनियमस्वीकारे लाघवमेव बीजम् । तथाहि भावनान्वयबोधायाऽपरपदार्थचैत्राद्युपस्थितिकल्पनमावश्यकम् । तथाच तत्र संख्यान्वयस्वीकारे पदार्थान्तरोपस्थित्यकल्पनप्रयुक्तलाघवमक्षुण्णमेवेति चेन्न । शाब्दिकमते भावनाया आख्यातवाच्यत्वाभावात् । आख्यातार्थे आश्रये संख्यान्वयस्वीकारे पदान्तराऽननुसंधानेन लाघवात् । तथाच संख्याबोधं प्रत्याख्यातजन्याश्रयोपस्थितेर्हेतुत्वं बोध्यम् । एतेन युष्मदादिसमानाधिकरणे इत्यस्य युष्मदर्थगतसंख्याभिधायिनीत्यप्यर्थोऽपास्तः । संख्यान्वयस्यानिश्चयात् । अतित्वं भवतीत्यत्रापि मध्यमत्वापत्तेश्च त्वच्छब्दस्यैव त्वत्कर्मकातिक्रमणकर्तरि लक्षणया युष्मदर्थ एव संख्यान्वयात् इत्यलम् ।

आख्यातस्थले क्रियाविशेष्यकः शाब्दबोधः प्रथमान्तविशेष्यकः शाब्दबोधो वा । अत्राहुः—पश्य मृगो धावतीत्यत्र प्रधानदर्शनक्रियां प्रति मृगस्य कर्मत्वात् द्वितीयापत्तिः । ननु तार्किकमते नायं दोषः, वाक्यार्थस्य कर्मत्वाद्वाक्यस्य प्रातिपदिकत्वाभावेन द्वितीयाया असंभवात् । अत एव कैयटादयोऽपीत्थमेव समादधुः । अत एव 'क्रमादमुं नारद इत्यबोधि सः,' इत्यादौ वाक्यार्थस्य कर्मत्वान्न द्वितीयेति समादधते । यत्तु तत्र निपातेनाभिहितत्वान्न द्वितीयेति तन्न । 'अनभिधानं च तिङ्कृत्त-

द्धितसमासैः' इत्येव भाष्ये पाठादिति चेत्सत्यम्। तदेव तु भवन्मते दुर्वचम्। तथाहि—वैयाकरणानां मते कारकविशिष्टा क्रिया वाक्यार्थः। तत्र धावतीत्यस्य प्रातिपदिकत्वाभावेन न द्वितीयेति युक्तोऽयं समाधिः। तार्किकमते तु क्रियाविशिष्टप्रथमान्तार्थस्य वाक्यार्थतया तस्य कर्मत्वं दुर्वारमेव। अन्यथा पचन्तं चैत्रं पश्येत्यादावपि पाकानुकूलकृतिविशिष्टस्य चैत्रस्य कर्मतया द्वितीयानापत्तेः। अत एव नीलो घटः करोतीति न प्रयोगः। नच नीलं करोति घटं करोतीति पृथगेव भाष्यरीत्या कर्मत्वात् द्वितीयेति वाच्यम्। एवमपि विशिष्टस्य कर्मतामादाय प्रथमापत्तेर्दुर्वारत्वात्। स्यादेतत्।

पश्य लक्ष्मण पम्पायां बकः परमधार्मिकः।

इत्यादौ बकादेः प्रातिपदिकत्वसंभवात् द्वितीया दुर्वारेति चेन्न। तत्राप्यस्त्यादिक्रियाध्याहारेणैव बोधात्। अत एव धिक् देवदत्तेत्यादौ धिगादियोगेऽपि न द्वितीया, संबोधनं क्रियायां विशेषणमिति सिद्धान्तितत्वेनास्मन्मतेऽध्याहृतक्रियाया एव विशेष्यत्वात्। अत एव शृणु देवदत्तो गायतीत्यत्र गानादेरेव कर्मत्वमनुभवसिद्धम्। एतेन—

श्रुत्वा ममैतन्माहात्म्यं तथाचोत्पत्तयः शुभाः।

इत्यत्रोत्पत्तीरिति द्वितीयावारणायार्षत्वं स्वीकुर्वन्तः परास्ताः। तत्राप्यध्याहृतायाः सन्तीत्यादिक्रियाया एव विशेष्यत्वात्।

अथ प्रथमान्तस्य विशेष्यत्वाभावे—

'सुरथो नाम राजाभूत्समस्ते क्षितिमण्डले।
तस्य पालयतः सम्यक्'

इत्यादौ तच्छब्देन सुरथपरामर्शानापत्तिरिति चेदेवं तर्हि—

तुल्येऽपराधे स्वर्भानुर्भानुमन्तं चिरेण यत्।
हिमांशुमाशु ग्रसते तन्म्रदिम्नः स्फुटं फलम्।

इत्यादौ तच्छब्देन ग्रसनस्य परामर्शानापत्तिः। अत एव च भावप्रधानमाख्यातमिति यास्कवचनमप्युपपद्यते। नचाख्यातार्थेषु संख्याकालादिषु भावनायाः प्राधान्यमिति तदर्थः शङ्क्यः। यत्रोभे भावप्रधाने भवत इति निरुक्तवचनमुपादाय यत्रोभे नामाख्याते भवतस्तत्र भावप्रधाने क्रियाप्रधाने इत्यर्थ इति तद्भाष्यव्याख्याया असंगतिः।

किंच पठन् गच्छतीतिवत्पठति गच्छतीत्यपि प्रयोगापत्तिः। पाठा-

नुकूलकृतिमांश्चैत्रो गमनानुकूलकृतिमानिति बोधसंभवात् । शाब्दिकमते तु क्रिययोः परस्परमनन्वयान्न तथा प्रयोगः । कथं तर्हि पचति भवतीत्यत्र पाकक्रिया भवतिक्रियायाः कर्त्र्यो भवन्तीति भाष्यम् । अत एव तिङन्तोपस्थापिता क्रिया क्रियान्तरैः समवायं गच्छतीति उक्तं भाष्य एवेति चेत्सत्यम् । कर्तृकर्मभावेन क्रिययोः परस्परमन्वयो भवति नतु करणत्वेनेति कैयटेन व्याख्यातम् । किंच धात्वर्थव्यापारप्रकारकशाब्दबोधं प्रत्याख्यातजन्योपस्थितेस्तार्किकमते हेतुतया—

पुरीमवस्कन्द लुनीहि नन्दनं मुषाण रत्नानि हरामराङ्गनाः ।
विगृह्य चक्रे नमुचिद्विषा बली य इत्थमस्वास्थ्यमहर्निशं दिवः ॥

इत्यादौ पुर्यवस्कन्दनरूपाऽस्वास्थ्यक्रियेत्याद्याकारकान्वयाभावे धातुसंबन्धे विहितस्य लोडादेरनापत्तिः । किंच धातुसंबन्धे प्रत्यया इत्यस्य धात्वर्थानां परस्परसंबन्धे सति यस्मिन्काले प्रत्यया उक्तास्ततोऽन्यत्रापि भवन्तीत्यर्थः । वर्तमानसामीप्य इत्यादिना कालबाधस्यैव प्रक्रान्तत्वात्काल एव बाध्यते । तत्रापि कृदुपस्थाप्यस्य गौणत्वानापत्तौ उक्तकालबाधरूपव्यवस्थाया अनुपपत्तिर्बोध्या । अपि च सुवृष्टिश्चेदभविष्यत्सुभिक्षमभविष्यदित्यादौ क्रिययोः कार्यकारणभावेनान्वयाभावे हेतुहेतुमतोर्लिङित्यादेरप्रवृत्त्यापत्तेरिति दिक् ।

धातूनां तु फलव्यापारोभयवाचकत्वं नतु व्यापारमात्रवाचकत्वम् । नच कर्मणि द्वितीयेत्यत्र कर्मपदस्य कर्मत्वपरतया कर्मत्वं च फलमेवेति फलं द्वितीयार्थ एवेति नैयायिकनव्योक्तं शङ्क्यम्, सकर्मकाकर्मकत्वविभागानापत्तेः फलव्यापारोभयवाचकत्वं सकर्मकत्वं केवलव्यापारवाचकत्वमकर्मकत्वमिति तैः स्वीकारात् । नच यद्धातुसमभिव्याहारे फलं व्यापारश्च प्रतीयते स धातुः सकर्मक इति तल्लक्षणमस्त्विति वाच्यं, कर्मप्रयोगे सकर्मकत्वज्ञानं सकर्मकत्वज्ञाने च कर्मप्रयोग इत्यन्योन्याश्रयापत्तेः । अथायमाशयः—संयोगरूपफलबोधे गमधातुसमभिव्याहारः कारणमावश्यकश्चायं कार्यकारणभावः अन्यथा गच्छतीत्यत्र विभागानुकूलव्यापार एव कुतो न प्रतीयत इत्यत्र नियामकाभावात् । गमधातुसमभिव्याहारस्य कारणत्वापेक्षया गमधातोः कारणत्वे एव लाघवात् । अत एव पाको गमनमित्यत्र न पर्यायता । नच तत्र ततत्फलावच्छिन्ने व्यापारे लक्षणा, तात्पर्यग्राहकं विना लक्षणाया अप्यसंभवात्, स्वरसत एव तद्बोधोदयेन लक्षणाया अयुक्तत्वाच्च । बोधकत्वं स्वीकृत्य वाचकत्वं

नास्तीत्यस्य दुर्वचत्वाच्च । किंच शाब्दबोधे वृत्त्या पदजन्यपदार्थोपस्थिते-र्हेतुतया फलविषयकशाब्दबोधं प्रति द्वितीयाजन्योपस्थितेर्हेतुत्वे गौरवम् । नच धातुजन्यफलोपस्थितेर्हेतुत्वं कल्प्यमिति साम्यमिति वाच्यम् । फल-विशेषबोधे धातुविशेषसमभिव्याहारस्य नियामकत्वेन तदंशे साम्यात् । अथाश्रयमात्रं द्वितीयार्थ इति द्वितीयाजन्योपस्थितेर्हेतुत्वकल्पने साम्य-मिति चेन्न, ग्राममध्यास्तेऽधिशेते इत्यादिप्रयोगानुरोधेनाश्रयत्वबोधं प्रति तद्धेतुत्वस्य भवतोऽप्यावश्यकत्वात् ।

किंच व्यापारमात्रस्य धात्वर्थत्वे पच्यते तण्डुलः स्वयमेवेत्यादौ कर्म-वद्भावानापत्तिः । नच धात्वर्थजन्यफलाश्रयत्वमेव कर्मवद्भावविषय इति वाच्यम्, (पच्यते? यत्यते) घटः स्वयमेवेत्यस्याप्यापत्तेः । धात्वर्थयत्नजन्यो-त्पत्तिरूपफलस्य घटे सत्त्वात् । अन्यथा क्रियते घटः स्वयमेवेत्यस्याना-पत्तेः । क्रिया च व्यापारसमुदायः । तदुक्तं हरिणा—

यावत्सिद्धमसिद्धं वा साध्यत्वेनाभिधीयते ।
आश्रितक्रमरूपत्वात्सा क्रियेत्यभिधीयते ॥ इति ।

एतेन धात्वर्थः क्रिया तद्वाचकत्वं च धातुत्वमित्यन्योन्याश्रयो-ऽपास्तः । साध्यत्वं च क्रियान्तरानुत्थापकत्वं तदेवासत्त्वभूतत्वम् । एतदे-वाभिप्रेत्योक्तं हरिणा—

असत्त्वभूतो भावश्च तिङ्पदैरभिधीयते । इति ।

व्यापाराणामनन्ततेति तदादिन्यायेन बुद्धिविशेषादेरेव शक्यतावच्छे-दकानां नियामकत्वात् । लकारविशेषाणां लडादीनां तु वर्तमानत्वादि-कमप्यर्थः । वर्तमानत्वं च प्रारब्धाऽपरिसमाप्तक्रियोपलक्षितत्वम् । वर्तमा-नत्वादीनां तु धात्वर्थव्यापारे एवान्वयः । तत्सत्त्वे एव पचतीत्यादि-प्रयोगात् ।

तर्किकास्तु यत्न एव वर्तमानत्वादीनामन्वयः, यत्नाभावेऽग्निसंयोगा-दिरूपव्यापारसत्त्वेऽप्ययं न पचतीति प्रयोगात् । वस्तुतस्तु यत्नस्यापि व्या-पारविशेषत्वाददोषः । किंच जानातीत्यादौ व्यापार एव तेषां वर्तमानत्वा-न्वयः । नष्टे नश्यतीति प्रयोगवारणायोत्पत्तेरप्याख्यातार्थत्वं स्वीकृत्य तत्रैव वर्तमानत्वादीनामन्वय इति दीधितिकृतापि स्वीकारादनेककार्य-कारणभावप्रसङ्गः । नच व्यापारे तदन्वये नाशस्य वर्तमानत्वान्नष्टेऽपि घटे नश्यतीति प्रयोगापत्तिरिति वाच्यम्, प्रतियोगिसहितनाशसाम-

ग्रीसमवधानस्यैव तत्र व्यापारात्। तच्चेदं वर्तमानत्वादि लकारद्योत्यं वाच्यं वेति पक्षद्वयमपि क्षोदक्षममेव । कालस्य क्रियारूपतया क्रियामात्रस्य च धातुवाच्यत्वात् लकारो द्योतक एव । अथवा क्रियागतं वर्तमानत्वादि लकारवाच्यमेवेत्यन्यत्र विस्तरः ।

परोक्षत्वमतीतत्वमनद्यतनत्वं च लिडर्थः । परोक्षत्वं च वक्तृसाक्षात्काराविषयत्वम् ‘ व्यातेने किरणावलीमुदयनः ’ इति त्वयुक्तमेव । एवं ‘ चक्रे सुबन्धुः सुजनैकबन्धुः ’ इत्यपि । यत्तु णलुत्तमो वेति ज्ञापकादपरोक्षेऽपि लिड् भवतीति तन्न, चित्तविक्षेपादिना स्वक्रियायाः प्रत्यक्षत्वाभावे उत्तमप्रयोगात् यथा ‘बहु जगदपुरस्तात्तस्य मत्ता किलाहम्’ इति ।

यत्तूक्तं वर्द्धमानेन तिङन्तप्रतिरूपकोऽयं निपात इति तच्चिन्त्यम् । तथा सति धात्वर्थतावच्छेदकफलाश्रयत्वाभावेन किरणावलीमित्यस्य कर्मत्वानापत्तेः ।

इत्याख्यातार्थधात्वर्थनिर्णयः ।

समासार्थनिर्णयः ।

समासस्थले विशिष्टस्यैवार्थवत्त्वं घटादिपदे घकारादीनामिव तत्राप्यवयवानां निरर्थकत्वादिति शाब्दिकाः । तार्किकास्त्ववयवशक्त्यैव निर्वाहमिच्छन्ति तन्मते समासे वृत्तिमत्त्वरूपार्थवत्त्वाभावात्प्रातिपदिकत्वानापत्तिः। अवयवार्थमादाय समुदायस्यार्थवत्त्वं तु न संभवति, एवमपि समुदायस्य शक्तिलक्षणयोरसंभवात् । अर्थवत्त्वं ह्यत्र सूत्रे वृत्तिमत्त्वमेव । अन्यथा गवित्ययमाहेत्यादावपि प्रातिपदिकत्वापत्तिः । सिद्धान्ते तु अनुकार्याऽनुकरणयोरभेदविवक्षायां सादृश्याद्गोशब्दादीनामुपस्थापकत्वेऽपि वृत्त्योपस्थापकत्वाभावान्नार्थवत्त्वम् । नच तत्र समासग्रहणात्प्रातिपदिकत्वं, तथासति समासग्रहणस्य नियमार्थत्वाभावे वाक्यस्यापि प्रातिपदिकत्वापत्तौ सुब्लुगापत्तेः । मूलकेनोपदंशमित्यादौ कृद्ग्रहणपरिभाषया प्रातिपदिकत्वापत्तेश्च । राजपुरुष इत्यादौ नामार्थयोरितिनियमाद्राजाभिन्नः पुरुष इति बोधापत्तिश्च । राजपदस्य राजसंबन्धिनि लक्षणया राजसंबन्ध्यभिन्नः पुरुष इति बोधाभ्युपगमे तु राज्ञीदासी इत्यत्र समानाधिकरणलक्षणपुंवद्भावापत्तिः । वृत्तेः प्राक् यत्र सामानाधिकरण्यं तत्रैव पुंवद्भावः इत्युक्तौ तु मृगीव चपला मृगचपलेत्यादावपि पुंवद्भावानापत्तेः । अत्र हि सदृशलक्षणया सामानाधिकरण्यम् । एवं चित्रगुरित्यादावपि चित्राऽभिन्ना गौरिति बोधवारणाय

गोपदस्य चित्रगवीस्वामिनि लक्षणा, चित्रपदं तात्पर्यग्राहकमिति सिद्धान्तः सोऽप्यसंगतः; समानाधिकरणलक्षणपुंवद्भावानापत्तेः, अनेकपदस्यैकस्मिन्नर्थे वर्तमानत्वाभावात् । देवदत्तं पण्डितं जानीहीत्यादाविव देवदत्तपण्डितं जानीहीत्यादावपि पाण्डित्यस्य विधेयत्वापत्तेश्च । अत एव पटुरहं ब्रवीमीत्यत्रास्मदो द्वयोश्चेत्यनेन प्राप्तस्य बहुवचनस्य सविशेषणानामित्यनेन प्रतिषेधो भवति । वयं ब्राह्मणा इत्यत्र तु ब्राह्मणत्वस्य विधेयत्वेन विशेषणत्वाभावान्न निषेधः ।

किंचावयवानामर्थवत्त्वे ऋद्धस्य राज्ञः पुरुष इत्यादाविव ऋद्धस्य राजपुरुष इत्यपि विशेषणयोगापत्तिः । नच यत्र समासघटकीभूतपदबहिर्भूतपदसापेक्षत्वमभेदेन तत्र समासोऽसाधुः । अत एव 'शरैः शातितपत्रोऽयम्' इत्यादौ न दोष इति वाच्यं, एतद्वचनारम्भस्यैव गुरुत्वात् । मम तु सापेक्षमसमर्थवदिति न वाचनिकं किंतु पदार्थैकदेशत्वान्न ऋद्धादीनामन्वय इत्यभिप्रायकम् । देवदत्तस्य गुरुकुलमित्यादौ तु लोके बोधोदयेन व्युत्पत्तिवैचित्र्यादेकदेशेऽप्यन्वयः स्वीक्रियते । एतदभिप्रायेणैवोच्यते भवति वै नित्यसापेक्षस्य वृत्तिरित्यसमर्थमित्यस्य हि लोके बोधाजनक इत्यर्थः ।

अथ तार्किकमतेऽपि राजपदस्य राजसंबन्धिनि लक्षणाभ्युपगमेनैकदेशत्वादेव न ऋद्धादीनामन्वय इति चेन्न । कण्ठेकालो दास्याःपुत्र इत्यादौ लक्षणायां मानाभावेन तत्र विशेषणान्वयापत्तेः । किंच यस्य राजपुरुष इत्यत्र लुप्तषष्ठ्यनुसंधानाच्छाब्दबोधस्तस्य पुरुषस्य तादृशप्रयोगापत्तेर्दुरत्वात् । नहि तत्र षष्ठी नानुसंधेयेति राजशासनमस्ति । अपि च वृत्तेरर्थवत्त्वाभावे पुरुषो व्याघ्र इव शूर इत्यादाविव पुरुषव्याघ्रः शूर इत्यस्य तुल्यार्थत्वापत्तौ उपमितं व्याघ्रादिभिरित्यत्र सामान्याप्रयोगे इति निषेधात्समासानापत्तेः । सिद्धान्ते तूपात्तधर्मातिरिक्तधर्मेण सादृश्यग्रहणे समासो भवत्येव अत एव 'भाष्याब्धिः क्वातिगम्भीरः' इत्यत्रापि तत्तदुरवगाहत्वादिना सादृश्यम् । अत एव वषट्कर्तुः प्रथमभक्ष इत्यत्र भक्षणमुद्दिश्य न प्राथम्यविधिरिति मीमांसकसिद्धान्तः । अत एव चेदृशविशेषयोः समासे सति अविमृष्टविधेयतादोषापत्तिरित्यालङ्कारिकाः

एवं राज्ञः पुरुषः शूरश्च भवतीति वाक्ये राजसंबन्धशूरत्वोभयस्य पुरुषे बोधवद्राजपुरुषः शूरश्चेत्यपि प्रयोगापत्तिः । किंच राजपुरुष इत्यादौ षष्ठ्यादिलोपे पाणिपादमित्यादौ चादिलोपे च गौरवात् । तस्मात्पङ्कजादि-

पदत्वत्समासेऽपि शक्तिकल्पनमुचितम् । अथ राजपुरुषादेः समुदायस्य शक्तत्वे निषादस्थपतिं याजयेदित्यत्र निषादानां स्थपतिरिति न तत्पुरुषः पूर्वपदे संबन्धिनि लक्षणाप्रसङ्गात्, किंतु कर्मधारयो लाघवादिति सिद्धान्तासङ्गतिरिति चेन्न । तत्पुरुषे संबन्ध्यादिरूपाधिकपदार्थान्तर्भावेणैकार्थीभावकल्पनमित्यत एव गुरुत्वात् । अत एव बहुव्रीहावन्यपदार्थान्तर्भावेणैकार्थीभावः कल्पनीय इति तत्पुरुषापेक्षया तस्य जघन्यत्वम् । नञ्समासे त्वारोपितत्वस्य नञा द्योतितत्वादब्राह्मण इत्यस्यारोपितब्राह्मण इत्यर्थः । ब्राह्मणभिन्न इत्यादिस्त्वार्थिकोऽर्थः । अत एवौत्सर्गिकं तत्पुरुषस्योत्तरपदार्थप्राधान्यमपि सिध्यतीत्यसर्वस्मै इत्यादौ सर्वनामत्वात्स्मायादयः ।

ननु शाब्दिकमते नञो द्योतकत्वादब्राह्मण इत्यादावेकार्थीभावासंभवः भिन्नार्थशब्दानामेकार्थवृत्तित्वस्यैवैकार्थीभावपदार्थत्वादिति चेन्न । ब्राह्मणत्वमारोपश्च ब्राह्मणशब्दार्थः । तयोश्च परस्परं विषयविषयिभावेनान्वयः । आरोपविषयब्राह्मण्यवानित्यर्थः । इदमेव नञो द्योतकत्वम् । एवं च तादृशपदार्थयोः परस्परमन्वयमात्रेणैकार्थीभावव्यवहारात् । भाष्यानुसारिणस्तु नञोऽभाव एवार्थः । स च प्रतियोगिनि विशेषणं विशेष्यो वेति पक्षद्वयम् । आद्ये घटो नास्तीत्यत्राभावप्रतियोगिघटकर्तृकासत्तेति बोधः । अत्वं भवसीत्यत्र भेदप्रतियोगित्वदभिन्नाश्रयिका भवनक्रियेति बोध इति युष्मदर्थसामानाधिकरण्यसत्त्वान्मध्यमत्वादिव्यवस्था सिध्यति। त्वत्प्रतियोगिकभेदवानित्यर्थे तु तदसिद्धेः । एवं न घटा वर्तन्ते इत्यत्र बहुवचनमपि सिध्यति। अभावपरत्वे तु तस्यैकत्वात्तदनापत्तेः। एवं सेव्यतेऽनेकया सन्नतापाङ्ग्या, अनेकमन्यपदार्थे इत्यत्रोत्तरपदार्थप्रधानत्वादेकवचनं सिध्यति । 'तपन्त्यनेके जलधेरिवोर्मयः' इत्यत्र त्वनेकशब्दस्यैकशेषेण बोधः । द्वितीये त्वभावविशेष्यक एव बोधः । उत्तरपदकार्यं तु अनञ्समास इति ज्ञापकादित्यन्यत्र विस्तरः ॥

इति समासार्थनिर्णयः ।

उपसर्गाणां द्योतकत्वमेव न वाचकत्वम्। अनुभूयते सुखमित्यत्र धात्वर्थतावच्छेदकफलशालित्वाभावेन कर्मणि लकारानापत्तेः । एवं चादीनामपि द्योतकत्वम् । अत एव साक्षात्क्रियते हरिरित्यादौ हरेः साक्षात्कारकर्मता । एतेन प्रादीनां द्योतकत्वं चादीनां वाचकत्वमित्यर्धजरतीयमपास्तम् ।

ननु चादीनां वाचकत्वाभावे स्वीकारार्थादोमितिपदाच्छाब्दबोधा-

नापत्तिरिति चेन्न, निपातानामेव द्योतकत्वेनाव्ययान्तरस्य द्योतकत्वाभावात्। ननु लौकिकविषयत्वं निपातार्थः। करोतेश्च तदनुकूलो व्यापारोऽर्थः। तथा च ग्रामं गच्छतीत्यत्र द्वितीयार्थफलाश्रयत्वेन, साक्षात्क्रियते हरिरित्यत्रापि करोत्यर्थजन्यनिपातार्थफलाश्रयत्वादेव कर्मत्वमस्त्विति वाच्यम्। केवलव्यापारवाचकत्वस्य पूर्वत्रैव निराकृतत्वात्।

किंच निपातानां वाचकत्वे शोभनः समुच्चयो द्रष्टव्य इतिवच्छोभनश्च द्रष्टव्य इत्यपि प्रयोगापत्तिः। घटस्य समुच्चय इति वद्घटस्य च इति प्रयोगापत्तिश्च। ननु शोभनः समुच्चय इत्यादौ नामार्थत्वादभेद एव शोभनश्चेत्यादौ तु निपातार्थत्वाच्छोभनवृत्तिः समुच्चय इति भेदान्वय एव निपातातिरिक्तनामार्थयोरेवाभेदस्वीकारादिति चेन्न। निपातातिरिक्तत्वविशेषणप्रवेशस्यैव गुरुत्वात्। अपि च—

शरैरुस्रैरिवोदीच्यानुद्धरिष्यन्रसानिव।

इत्यादावनन्वयः। अत्रोस्रसदृशैः शरै रससदृशानुदीच्यानुद्धरिष्यन्नित्यर्थः। स चोस्रादिपदानां तत्सदृशपरत्वे इवशब्दस्य द्योतकत्वे च संगच्छते। तथाहि—उस्रैरिति करणे तृतीया। नचोस्रोऽत्र करणमिवशब्दार्थसदृशस्य करणत्वेन तु तत्र क्रियाया आवृत्त्योऽस्रकरणकसकर्मकोद्धरणसदृशशरकरणकोदीच्यकर्मकोद्धरणमित्यर्थान्न दोष इति वाच्यम्। वारद्वयमिवशब्दप्रयोगासंगतेः। उपसर्गत्वापेक्षया निपातत्वस्याधिकवृत्तितया तदवच्छेदेन द्योतकतायाः कल्पयितुमुचितत्वाच्च। सामान्ये प्रमाणानां पक्षपातात्। निपातत्वं चाखण्डोपाधिरूपं जातिरूपं वोभयथापि प्रादिचादिसाधारणमेव। नञ्तत्पुरुषे उत्तरपदार्थप्राधान्यमिति प्रवादस्य पूर्वपदद्योत्यं प्रति प्राधान्यमित्याशयः। द्योत्यार्थेन चार्थवत्त्वात्प्रातिपदिकत्वमपि।

इतिचाद्यर्थनिरूपणम्।

जातिरेव शब्दार्थ इति मीमांसकाः। तथाहि—व्यक्तीनामानन्त्यादेकव्यक्तौ शक्तिग्रहे व्यक्त्यन्तरबोधाच्च न व्यक्तौ शक्तिसंभवः। जातिविशिष्टायां व्यक्तौ शक्तिरित्युक्तौ तु 'नागृहीतविशेषणा बुद्धिर्विशेष्यमुपसंक्रामति' इति न्यायादावश्यकत्वाच्च जातावेव शक्तिरस्तु व्यक्तिबोधस्त्वाक्षेपात्। नचाक्षेपितव्यक्तेः पदार्थत्वाभावाद्ग्रामानयेत्यादौ कथं व्यक्तौ कर्मत्वाद्यन्वयः प्रत्ययानां प्रकृत्यर्थान्वितस्वार्थबोधकत्वादिति

वाच्यम्, लक्षणया तस्या अपि प्रकृत्यर्थत्वात्। लक्षणैव ह्यत्राक्षेपशब्दार्थः। (नचानुपपत्तिप्रतिसंधानं विना कथं लक्षणेति वाच्यं, निरूढलक्षणायां-तदनपेक्षणात्। ?)

ननु 'स्वार्थादन्येन रूपेण ज्ञाते भवति लक्षणा' इति नियमात्कथं घटत्वेनोपस्थिते लक्षणेति चेन्न, एतन्नियमे मानाभावात्। अत एव नीलं घटमानयेत्यादौ नीलरूपवति लक्षणेत्याहुः।

नैयायिकास्तु जात्याकृतिव्यक्तयः पदार्था इत्याहुः। अत्र यद्यपि एकं द्विकं त्रिकं चाथेत्यादिना बहवः पक्षाः शास्त्रसंमतास्तथापि केवलव्यक्तिरेव शब्दार्थ इति पक्षो ज्यायान्, शक्तिग्राहकशिरोमणेस्तत्रैव पक्षपातात्। ननु व्यक्तीनामेव शब्दार्थत्वे आनन्त्याद्व्यभिचाराच्चेति प्रागुक्तो दोष इति चेन्न। जातेरुपलक्षणत्वस्वीकारात्। तदुक्तं भट्टपादेन—

आनन्त्येऽपि हि भावानामेकं कृत्वोपलक्षणम्।
शब्दः सुकरसंबन्धो नच व्यभिचरिष्यति। इति

अत्र वदन्ति—व्यक्तीनामानन्त्याद्गोत्वादिविशिष्टव्यक्तौ शक्तिकल्पने गोत्वादौ शक्यतावच्छेदकत्वकल्पनस्यावश्यकतया व्यक्तिशक्तिकल्पने प्रयोजनविरहः। यथाहि गोत्वांशे शक्यतावच्छेदकता निरवच्छिन्ना तथाऽस्मन्मते शक्तिरपि निरवच्छिन्नेति न गोत्वत्वप्रवेशाद्गौरवम्। अथ जातिशक्तिवादिमतेऽपि गौर्नष्टा इत्यादौ व्यक्तिभानस्यावश्यकतया शक्तिर्दुर्वारैवेति चेन्न, व्यक्तिशक्तिज्ञानत्वेन शाब्दबोधे हेतुता न स्वीक्रियत इत्येतावतैव व्यक्तेरवाच्यत्वव्यवहारात्। अत एव व्यक्त्यंशे कुब्जाशक्तिरिति व्यवहारः। अत एव संसर्गाणां शाब्दबोधविषयत्वेऽपि न वाच्यता। एवं च गौर्गोपदशक्य इति व्यवहारोऽपि न विरुध्यते।

अत्र केचित्—घटपदाद्घटत्वेन रूपेणोपस्थितिर्न द्रव्यत्वादिरूपेणेति वैषम्यानुपपत्तिः। घटे घटत्वस्येव द्रव्यत्वादेरपि वैशिष्ट्ये विशेषाभावात्। तस्माद्घटत्वविशिष्ट एव शक्तिरूपेया, घटत्वविशिष्ट इत्यस्य च घटघटत्वयोरित्येवार्थः। घटत्वस्योपलक्षणत्वे उक्तदोषानुद्धारात्। अत्रेदं तत्त्वम्—अलक्ष्यस्य लक्ष्यतावच्छेदकत्ववद्कारणस्य च कारणतावच्छेदकत्ववदशक्यस्य शक्यतावच्छेदकत्वे बाधकाभावाद्घटत्वादिकमुपलक्षणम्। अत एव दीधितौ शक्यतावच्छेदके शक्तिर्दूषितैवेत्यलम्।

विशेषणविभक्तेरभेदार्थत्वमित्येके। साधुत्वार्थकत्वमित्यन्ये। अत्रेदं बोध्यं—नीलं घटं करोतीत्यादौ घटपदोत्तरद्वितीयया कर्मत्वस्याभिहित-

तया नीलपदोत्तरं द्वितीया न प्राप्नोतीत्याशङ्क्य नीलं करोति घटं करोतीति पृथगेवान्वयः। पश्चान्मानसो नीलघटयोरभेदावगम इति समाहितम्। तिङ्कृत्तद्धितेति परिगणनं तु नाश्रयणीयमित्याशयः। यदा याचितमण्डनन्यायेनैकस्मिन्नेव कर्मणि घटपदादिव नीलपदादपि द्वितीयेति पक्षस्तदा साधुत्वार्थकत्वप्रवादः। अत एवोक्तं भाष्ये अथवा कट एव कर्म तत्सामानाधिकरण्याद्भीष्मादिभ्योऽपि द्वितीयेति विशेष्यसमानविभक्तिकत्वं विशेषणस्य न्याय्यमिति भावः। तद्यथा ईश्वरसुहृदः स्वयं निर्धना अपि तद्धनेन धनफलभाजस्तद्वत्। भाष्ये तु पक्षान्तरमप्युक्तम्। अथवा कटोऽपि कर्म भीष्मादयोऽपीति, कटपदोत्तरद्वितीयया कटगतकर्मत्वस्योक्तावपि भीष्मगतकर्मत्वबोधनाय भीष्मपदोत्तरमपि द्वितीयावश्यकीत्यस्मिन्पक्षे भीष्मरूपकर्माभिन्नं कटरूपं कर्मेत्यर्थः। एवं च विशेषणविभक्तेरभेदे वृत्तिकल्पनं निर्मूलम्।

पदार्थभेदे द्वन्द्वः पदार्थतावच्छेदकभेदे कर्मधारय इति तार्किकानां प्रवादः। अत्र पदार्थत्वं पदजन्यप्रतीतिविषयत्वम्, तच्च पदार्थतावच्छेदकसाधारणं, तत्रापि प्रकारतारूपविषयतासत्त्वात्। एवं च नीलघटयोरभेद इत्यादौ पदार्थतावच्छेदकयोर्नीलत्वघटत्वयोर्भेदादेव द्वन्द्वः। इत्थमेव प्रमाणप्रमेयप्रयोजनेत्यादिगौतमसूत्रेऽपि प्रमाणप्रमेययोर्भेदाभावेऽपि पदार्थतावच्छेदकयोः प्रमाणत्वप्रमेयत्वयोर्भेदादेव द्वन्द्वः । अथैवं द्वन्द्वापवाद एकशेष इति प्रवादविरोधः घटा इत्यादौ पदार्थतावच्छेदकस्यापि भेदाभावेन द्वन्द्वाप्राप्त्याऽपवादत्वासंभवात्। यतूक्तं जगदीशेन 'घटा इत्यादौ व्यक्तिभेदसत्त्वात् द्वन्द्वप्राप्त्युपपादने घटकलशावित्यत्र पदबोध्यभेदसत्त्वात् द्वन्द्वापत्तेः नहि तत्रैकशेषः संभवति विरूपत्वादिति' तदशुद्धं विरूपाणामपि समानार्थानामिति वार्तिकेन तत्राप्येकशेषस्य दुर्वारत्वात्।

यत्तु तार्किकैकदेशिनः—एकशेषः कृतद्वन्द्वानामेव, अन्यथा श्रूयमाणपदोत्तरमेकवचनप्रसंगादिति, तन्न। कृतद्वन्द्वानामेकशेषे करौ करा इत्यत्र द्वन्द्व इव प्राणितूर्यसेनाङ्गानामित्येकवद्भावापत्तेरिति चेदत्राहुः 'पदार्थशब्दः पदजन्यप्रतीतिविषयपरः घटे विशेष्यता घटत्वे च प्रकारतारूपा सेति घटा इत्यादौ नीलघटयोरभेद इत्यादौ च पदार्थभेदसत्त्वात्।

यत्तु पदार्थतावच्छेदकभेद एव द्वन्द्व एकशेषोऽपि हरय इत्यादावेव। अपवादत्वप्रवादोऽपि तत्रैव द्वन्द्वप्राप्तेरिति तन्न। घटोऽयं घटोऽयमिति प्रयोगवत् व्यक्तिमात्रविवक्षायां घटघटावित्यस्यापि प्राप्त्या तत्राप्येकशेषस्याव-

श्यकत्वात् । एतेनाविशिष्य एवैकशेषः, एकघटशब्दादेव बहुवचनेनानेकघटबोधसंभवात् सकृदुच्चरितः सकृदर्थं गमयतीतिन्यायस्याप्रामाणिकत्वात्, हरय इत्यादावपि सति तात्पर्ये युगपदनेकबोधे इष्टापत्तिरेवेति परास्तम्; हरिहरी इत्यादिद्वन्द्ववारणायैकशेषस्यावश्यकत्वात् । किंच पदार्थतावच्छेदकभेदस्यैव नियामकत्वे एकस्मिन्नपि पुंसि दण्डिकुण्डलिनौ गच्छत इति प्रयोगापत्तिः । पदार्थतावच्छेदकस्य दण्डकुण्डलादेर्भेदसत्त्वात् । नच द्वित्वानन्वयः शङ्क्यः, नीलघटयोरभेद इत्यादाविव पदार्थतावच्छेदके तदन्वयसंभवात् ।

दीधितिकृदनुयायिनस्तु—एकपदार्थेऽपरपदार्थाभेदतात्पर्यसमासकत्वं कर्मधारयत्वं, भेदतात्पर्यकत्वं द्वन्द्वत्वमित्याहुः ।

शाब्दिकमते तु—शब्दस्वरूपस्यापि शाब्दबोधे विशेषणतया भानान्नीलघटयोरित्यत्र नीलपदोपस्थाप्यघटपदोपस्थाप्ययोरित्यर्थः । तत्र विशेषणीभूतशब्दस्वरूपभेदात्पदार्थभेदादेव द्वन्द्वः । अत एव च 'असुरा दैत्यदैतेयदनुजेन्द्रारिदानवाः' इत्यत्र विरूपाणामपि समानार्थानामित्येकशेषो न भवति समानप्रवृत्तिनिमित्तकस्यैव समानार्थत्वात् संज्ञाशब्दे द्रव्यस्यैव प्रवृत्तिनिमित्तत्वात् । एवं चेन्द्रपदवदभिन्नो मघवत्ववानिति बोधः । ध्वनीनां सर्वत्रानित्यत्वात्तदभिव्यङ्ग्यः स्फोट एवार्थवानिति सिद्धान्तः ।

तार्किकास्तु—श्रूयमाणपदानामेव वाचकत्वमिच्छन्ति । यत्तु इदं पदमत्र शक्तमित्यर्थात्कोशे पदमेव पदार्थ इति तन्न । नामार्थयोरभेद इतिन्यायविरोधापत्तेः ।

नन्वेकैकवर्णानां वाचकत्वे घकारमात्रश्रवणेऽपि घटबोधापत्तिः । समुदायस्तु तेषामसंभवी वर्णानामाशुविनाशित्वादिति चेन्न । तत्तद्वर्णानुभवजनितसंस्कारैस्तावद्वर्णगोचरायाः समूहालम्बनात्मकैकस्मृतेः स्वीकारात् ।

अत्रेदं चिन्तनीयम्—चरमवर्णानुभवकाले तन्नाशानन्तरं वा पूर्ववर्णस्मरणं कल्प्यते । नाद्यः ज्ञानद्वययौगपद्यस्य तैरस्वीकारात् । न द्वितीयः उद्बोधकाभावात् । ननु पूर्ववर्णानुभवजनितसंस्कारसहितचरमवर्णानुभव एव तावद्वर्णस्मरणहेतुरिति चेन्न । संस्कारानुभवस्मरणानां समानविषयकत्वेन कार्यकारणभावात् । एतेन तावद्वर्णसंस्कारैः समूहालम्बनात्मकमेकं स्मरणमुत्पद्यत इत्यपास्तम् । उद्बोधकाभावात् । किंच समूहालम्बनस्वीकारे घकारष्टकारो मकार इत्यतो घटमित्यस्य वैलक्षण्यानापत्तेः । सरो रस

इत्यनयोर्वैलक्षण्यानापत्तेश्च । नह्येकस्मरणविषयाणां वर्णानां पौर्वापर्यसंभवः । अथ येन क्रमेणानुभूतास्तेनैव क्रमेण स्मृत्यारूढाः शाब्दबोधं जनयन्तीति चेन्न । क्रमेणानुभूतानामपि व्युत्क्रमेण श्लोकादौ स्मरणदर्शनात् ।

यत्तु वर्णानां प्रत्येकं स्फोटव्यञ्जकत्वं मिलितानां वेति शाब्दिकमतेऽपि प्रागुक्तविकल्पाद्दोष इति तन्न । घकारादिभिर्वर्णैरवयवव्यञ्जनद्वारा समुदायाभिव्यक्तेः ।

यदपि गृहीतसंकेतानां वर्णानां स्फोटव्यञ्जकत्वमगृहीतसंकेतानां वा । आद्ये तैरेव सिद्धौ किं तेन, द्वितीये तु सर्वस्यापि तद्बोधापत्तिरिति तन्न । अगृहीतसंकेतैरपि व्यञ्जनात् । अत एवागृहीतार्थकेष्वेकं पदमिति व्यवहारः । तस्मात्समूहालम्बनव्यावृत्त एकं पदमित्यनुभवसाक्षिक आनुपूर्वीविशेषविशिष्टः कश्चिदवश्यं शब्दपदार्थः स्वीकार्यः । स एव शाब्दिकानां स्फोटः । अत एव घटादीनामतिरिक्तत्वं नतु त्रसरेणुपुञ्जात्मकत्वं विशकलितेषु तेष्वपि घट इति बुद्ध्यापत्तेरिति वैशेषिकाः ।

यत्तु एकं पदमित्यनुभवोऽर्थैकत्वनिबन्धन इति तन्न । अर्थबोधाभावेऽपि पदत्वग्रहात् । तदेव पदमिति बुद्धेस्तज्जातीयविषयत्वे तज्जातीयं पदमिति व्यवहारापत्तेश्च । किंच हरेऽव विष्णोऽवेत्यादावेकादेशे कृते पदविभागासंभवेन समुदायशक्तिरावश्यकी । किं चोच्चारणभेदाद्भिन्नेषु व्यक्तिवाद इव शक्त्यनापत्तेः । आनन्त्यादिदोषात् । अपि चानुपूर्वीविशिष्टस्यैव पदत्वेन समूहालम्बने पदत्वानुभवो दुर्घटः । यत्तु पूर्ववर्णध्वंसविशिष्टचरमवर्णानुभव एवानुपूर्वीति तन्न । यत्र घकारमुच्चार्य प्रहरानन्तरं टकार उच्चारितस्तत्रापि पूर्ववर्णध्वंससत्वेनातिव्याप्तेः । किंच श्लोकादौ पदविभागे क्रियमाणे शाब्दबोधस्यानुभवसिद्धस्यापलापापत्तिः । वर्णानां पौर्वापर्यस्य पदविभागात्प्रागिवोत्तरत्रापि समत्वात् । अपि च घटमानय देवदत्तेत्यादौ यदि प्रथमक्षणे घटपदस्मरणं द्वितीयादिक्षणे आनयनादिस्मरणं तदा तृतीयादिक्षणे पूर्वस्मरणस्य नाशाच्छाब्दबोधानुपपत्तिस्तदवस्थैव । अतो युगपत्तेषां स्मरणमित्यभ्युपेयम् । तदुक्तम्—

> वृद्धा युवानः शिशवः कपोताः खले यथामी युगपत्पतन्ति ।
> तथैव सर्वे युगपत्पदार्थाः परस्परेणान्वयिनो भवन्ति ॥ इति ।

एवं च गिरिर्भुक्तमग्निमान्देवदत्तेनेत्यादावपि समूहालम्बने पदार्थानां विशेषविषयत्वाविशेषात् अत्राऽऽसत्त्यभावाच्छाब्दबोधाभाव इति तार्किकप्रवादविरोध इत्यलम् ।

ते च स्फोटा अष्टौ । यूपः सूप इत्यादौ वर्णभेदेनार्थभेदाद्वर्णा अपि वाचका इति वर्णस्फोटः । पदवाक्यस्फोटौ तूक्तावेव । पदादौ वर्णादयो न संतीति अखण्डः पदवाक्यस्फोटः । वर्णपदवाक्यानां च जातिरेव वाचिकेति वर्णपदवाक्यजातिस्फोटः । अत्रेदं तत्वम्—परा पश्यंती मध्यमा वैखरीति चतुर्विधा वाक् । तथाहि—भगवतो जगत्सिसृक्षया मायापुरुषावाविर्भवतः । तत्र त्रिगुणं यदव्यक्तं तस्माद्बिन्दुरूपाच्छब्दाद्ब्रह्मनामधेयं वर्णादिविशेषरहितं नादमात्रमुत्पद्यते तदेव जगदुपादानं परा वागित्युच्यते बिन्दुरवस्य (?) जगतो व्यञ्जनात् । तदुक्तं भारते—

क्रियाशक्तिप्रधानायाः शब्दशब्दार्थकारणम् ।
प्रकृते बिन्दुरूपिण्याः शब्दब्रह्माभवत्परा ॥
स्वरूपज्योतिरेवान्तः परा वागनपायिनी ।
तस्यां दृष्टस्वरूपायामधिकारो निवर्तत इति ॥

श्रोत्रविषया वैखरी, हृदयदेशस्था मध्यमा, पश्यंती तु लोकव्यवहारातीता । योगिनां त्वस्ति तत्रापि प्रकृतिप्रत्ययविभागः । तदुक्तं भारते—

प्राणवृत्तिमनुक्रम्य मध्यमा वाक् प्रवर्तते ।

प्राणवृत्तिमनुक्रम्य प्राणव्यापारमाश्रित्य ।

अविभागात्तु पश्यन्ती सर्वतः संहृतक्रमा ।
स्थानेषु विवृते वायौ कृतवर्णपरिग्रहा ॥
वैखरी वाक् प्रयोक्तृणां प्राणवृत्तिनिबन्धनी ।

प्राणवृत्तिनिबन्धनीति प्राण एव स्थानाभिघातद्वारा तद्रूपेणापि वर्तत इत्यर्थः ।

हरिरप्याह—

वैखर्या मध्यमायाश्च पश्यन्त्याश्चैतदद्भुतम् ।
अनेकतीर्थभेदायाः त्रय्या वाचः परं पदम् ॥ इति ॥

अनेकतीर्थभेदायाः नामाख्यातादिभेदभिन्नायाः परायाः योगिनामपि प्रकृतिप्रत्ययविभागो नास्तीति त्रय्या इत्युक्तम् । तथाच श्रुतिः—

'चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः ।
गुहा त्रीणि निहिता नेंगयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥' इति ।

तथा च हरिवंशेऽपि—

'अक्षराणामकारस्त्वं स्फोटस्त्वं वर्णसंश्रयः' इति ।

स्फुटत्यर्थोऽस्मादिति स्फोटो नित्यशब्दः। अत एवाक्षरशब्दस्य ब्रह्मवाच-

कस्य सादृश्याद्वर्णेषु प्रयोगः । सादृश्यं च नित्यत्वेनैव । तत्र नित्यत्वं व्यवहारनित्यापेक्षमित्येके । आकाशवत्तन्निष्ठशब्दस्यापि नित्यत्वं व्यञ्जकविरहाच्च न सर्वदोपलम्भ इत्यन्ये । ध्वनिशब्देन वैखरी वागुच्यते । स्फोटशब्देन मध्यमा वागुच्यते । अत एव सर्वे सर्वार्थवाचका इति प्रवादः। शब्दमात्रस्यार्थमात्रस्य च ब्रह्मोपादानकत्वेन ततो भेदाभावात् । अत एव नित्यः शब्दार्थसंबन्ध इति प्रवादः । अत एवोक्तं योगवाचस्पत्ये 'सर्वे च शब्दाः सर्वार्थाभिधाने समर्था ईश्वरसंकेतस्तु प्रकाशकः' इति । अत एवोक्तं न्यायवाचस्पत्ये 'सर्गादिभुवां महर्षिदेवतानामीश्वरेण साक्षात्कृतः संकेतस्तद्व्यवहारादस्मदादीनामपि सुग्रहः संकेत इति सर्वेषामर्थानां सर्वशब्दैः संबन्धश्च योगिप्रत्ययगम्य एव तेषामुभयरूपता पराप्रत्ययान्तात्(?)अत- एवोक्तं हरिणा—

'व्यवहाराय नियमः संज्ञायाः संज्ञिनि क्वचित्' इति ।

क्वचित्संज्ञिनि संज्ञाया नियमो व्यवहारायेत्यर्थः । यथास्मदीयशास्त्रे वृद्धिशब्देनादैच एव ग्राह्या इति । पुरुषव्यापारात्प्रागवाचकस्य पुरुषव्यापारेण वाचकता कर्तुं न शक्यते शब्दार्थसंबन्धस्य नित्यत्वादिति तदाशयः । अत एव घटपदस्य घटे संकेते सति तदर्थबोधो भवत्येव । ननु व्यवहाराय नियम इत्ययुक्तं वृद्धिरादैजित्यादिसूत्राणां संकेतप्रकाशकत्वेन विधित्वस्यैव न्याय्यत्वादिति चेत्सत्यं, यथा विद्यमाने एव घटे नीलो घट इति नीलसंबन्धः पुरुषेण बोध्यते न तु तत्र नीलादियोगः क्रियते ततश्च नील एव न पीत इति नियमः फलति । तदुक्तं हरिणा—

'वृद्ध्यादीनां च शास्त्रेऽस्मिन् शक्त्यवच्छेदलक्षणः ।
अकृत्रिमोऽभिसंबन्धो विशेषणविशेष्यवत् ॥' इति ॥

शक्त्यवच्छेदः शक्तिसंकोचः । विशेषणविशेष्यवदित्यस्यार्थ उक्त एव । अत एव तत्र वाचकताबोधनेऽपि तदनुत्पादनान्न शब्दार्थसंबन्धस्यानित्यत्वं पाणिन्यादिसंकेतग्राह्यत्वात्संज्ञानामनित्यत्वप्रवादः । वृद्धिशब्दस्यादैक्ष्वेव प्रयोग इत्यत्र पाणिनीच्छाया एव नियामकत्वाच्च यदृच्छाशब्दत्वव्यवहारः। अत एव स्वेच्छया संज्ञाः क्रियन्ते इत्यपि प्रवादः । गौणमुख्यव्यवहारस्तु प्रसिद्ध्यप्रसिद्धिनिबन्धन एव । अत एवोक्तं हरिणा—

सर्वशक्तेस्तु तस्यैव शब्दस्यानेकधर्मणः ।
प्रसिद्धिभेदाद्गौणत्वं मुख्यत्वं चोपचर्यते ॥ इति ॥

गौणमुख्यार्थबोधकः शब्द एव प्रकरणादिरूपनिमित्ताभावाच्च न सर्वस्य

युगपत्प्रकाशनम् । सर्वशक्तेरित्यस्य व्याख्यानमनेकधर्मेण इति । गोशब्दस्य गोत्वजातौ प्रसिद्ध्या मुख्यत्वं वाहीके त्वप्रसिद्ध्या गौणत्वमित्यर्थः ।

शक्तिर्नाम शब्दार्थयोस्तादात्म्यमेव । अत एव पुरोवर्तिपदार्थं दृष्ट्वा वाचकजिज्ञासया कोऽयमिति प्रश्ने देवदत्तोऽयमित्युत्तरम् । अत एवोक्तं पातञ्जलभाष्ये 'संकेतस्तु पदपदार्थयोरितरेतराध्यासरूपः स्मृत्यात्मको योऽयं शब्दः सोऽर्थो योऽर्थः स शब्दः' इति इतरेतराध्यासः परस्परात्मकतारोपः अन्यस्मिन्नन्यधर्मावभासोऽध्यासः। स्मृत्यात्मक इत्यनेन ज्ञात एव संकेतः शक्तिबोधक इति सूचितम् । कः शब्दः कोऽर्थः इति प्रश्ने घट इत्ययं शब्दो घट इत्ययमर्थ इति समानाधिकरणोत्तरदर्शनाच्छब्दार्थयोरध्याससिद्धिः । अत एव 'रामेति द्व्यक्षरं नाम मानभङ्गः पिनाकिनः' इत्यादौ शब्दार्थयोरप्यभेदेन व्यवहारः । ओमित्येकाक्षरं ब्रह्मेत्यादिश्रुत्यादावपि अभेदेनैव निर्देशः । अभेदस्याध्यस्तत्वाच्च भेदव्यवहारोऽपि अस्यार्थस्यायं वाचक इति । अत एवोक्तं हरिणा—'तादात्म्यमुपन्यस्येव शब्दार्थस्य प्रकाशकाः' इति । अत्रेवशब्देन तादात्म्यस्याताात्त्विकत्वं सूचितम् ।

यत्तु शब्दशब्दार्थयोरभेदे अग्न्यादिशब्दैर्मुखदाहापत्तिरिति तन्न । उक्तयुक्त्या तादात्म्यस्यारोपितत्वेन दाहकत्वादिशक्तेरभावात् । लक्षणाया वृत्त्यन्तरत्वमयुक्तं बोधकतारूपाया भगवदिच्छाया वा शक्तेर्लाक्षणिकेप्यविशिष्टत्वात् । शाब्दबोधे वृत्त्या पदजन्यपदार्थोपस्थितिः कारणं तत्र वृत्तित्वस्य शक्तिलक्षणावच्छेदकत्वे गौरवाच्च ।

ननु गङ्गापदस्य गङ्गातीरे शक्तिस्वीकारे स्वारसिकप्रयोगापत्तिरिति चेन्न, तत्र गङ्गापदस्याप्रसिद्धत्वात् । अत एव हरिपदस्य क्लीबादिवाचकत्वाविशेषेऽपि न झटिति तेषां प्रत्ययः । अत एव हनधातोर्गतौ शक्तितौल्येऽपि न स्वारासिकः प्रयोग इति दिक् ।

घटः कर्मत्वमानयनं कृतिरित्यादौ पदार्थोपस्थित्यादिसत्त्वादन्वयबोधापत्तिवारणायाकाङ्क्षा हेतुः । यस्य पदस्य यत्पदव्यतिरेकप्रयुक्तान्वयाननुभावकत्वं तत्पदे तत्पदवत्त्वमाकाङ्क्षा । ननु नीलपदं विनापि घटमानयेत्यादावन्वयदर्शनान्नीलघटयोराकाङ्क्षासिद्धये भेदबोधाभावे समानविभक्तिकपदान्तराभाव एव प्रयोजको वाच्यः । तथाच घटः कर्मत्वमिति निराकाङ्क्षेऽतिव्याप्तिरिति चेन्न, तत्राकाङ्क्षासत्वेऽपि योग्यताविरहेण शाब्दबोधाभावात् । एकपदार्थेऽपरपदार्थसंबन्धो योग्यता । वह्निना सिञ्चतीत्यादावयोग्यत्वान्न दोषः ।

ननु एकेत्यादि पदविशेषणं वा पदार्थविशेषणं वा। आद्ये एकधातुपदोपस्थाप्ययोः फलव्यापारयोः परस्परमन्वयबोधानापत्तिः। द्वितीये तु प्रमेयत्व प्रमेयत्वमित्यादौ पदार्थभेदाभावादव्याप्तिरिति चेन्न। पदार्थे पदार्थसंसर्गस्य विवक्षितत्वात्। अव्यवधानेनोपस्थितिरासत्तिः। तेन गिरिर्भुक्तमग्निमान्देवदत्तेनेत्यादौ न बोधः। ननु पदजन्यसमूहालम्बने सकलपदार्थोपस्थितिसत्त्वादासत्तिरस्त्येव अन्यथा काव्यादावन्वयवाक्याच्छाब्दबोधानापत्तिरिति चेत्सत्यम्। अव्यवहितपदार्थोपस्थित्यनुकूलव्यापार एवासत्तिः। एकपदानन्तरमपरपदे क्वचिदुच्चारणं क्वचित्प्रतीतीच्छैव व्यापारः। श्लोकादौ पदतात्पर्यप्रदर्शनायैव योजनावाक्यम्। शुकवाक्येऽपि शिक्षकस्यैव व्यापारः।

कारकत्वं नाम क्रियान्वितकर्तृत्वकर्मत्वादिषट्कान्यतमान्वयित्वम्। दुह धातोर्विभागानुकूलव्यापारानुकूलव्यापारोऽर्थ इति विभागरूपफलाश्रयत्वाद्गोः कर्मतेति तार्किकास्तन्न। फलद्वयार्थत्वे गोः पयो दुग्धे इति पञ्चम्यनापत्तेः। नचापादानत्वविवक्षया सेति वाच्यम्। तथा सति ग्रामात् त्यजतीत्यस्याप्यापत्तेः। क्रियान्वितेति विशेषणस्याप्यर्थत्वाविषयादपि(?)क्रियान्वितविभक्त्यर्थान्वयित्वं कारकत्वमिति तदपि न, वर्षासु भवति वर्षाभूरित्यत्र विभक्त्यभावेन कारकत्वानापत्तौ यणनापत्तेः। तन्मते लक्षणाभ्युपगमेन विभक्त्यनुसंधानस्याप्यभावात्। अनुसंधाने वा नटश्रुतमित्यादौ कारकत्वापत्तौ कारकाद्दत्तश्रुतयोरित्युदात्तत्वापत्तिः। एतेन फलाश्रयत्वं कर्मत्वमित्यपास्तं गां दोग्धीत्यत्राऽव्याप्तेरित्यलम्।

अनादित्वमनपभ्रष्टत्वमभ्युदययोग्यत्वं वा साधुत्वम्। बोधकत्वं तत्त्वमित्युक्तौ गाव्यादावतिव्याप्तिः। शक्तत्वं तत्त्वमित्युक्तौ विकरणानामसाधुतापत्तेः। टिघुभादिसंज्ञासु अभ्युदययोग्यत्वाभावेऽपि अनपभ्रष्टत्वादेव साधुत्वम्। देशभाषया क्रियमाणानां कूर्चामंचीत्यादीनामसाधुत्वमेव। आधुनिकनाम्नां संकल्पादौ प्रयोगस्तु भ्रान्त्यैव। कृतं कुर्यादित्यादिनियमात्। असाधुशब्दानां त्वानन्त्यान्न शक्तत्वम्, अर्थबोधस्तु साधुस्मरणद्वारा। अव्युत्पन्नानां तु शक्तिभ्रमाद्बोधः। अन्ये त्वाहुः बोधकतारूपा शक्तिरपभ्रंशेष्वपि दुर्वारैवेति॥

इति श्रीमद्देवीदत्तात्मजरामसेवकतनूद्भवकृष्णाचार्यकृतो वादसुधाकरः समाप्तिमियात्॥

मौनिश्रीकृष्णभट्टविरचितः
लघुविभक्त्यर्थनिर्णयः ११

कारुण्यवर्षजलदं फलदं तपसां सताम् ।
नीलोत्पलदलच्छायं निर्मायं धाम कामये ॥ १ ॥
तर्कव्याकृतिमीमांसापरिशीलनशालिना ।
मौनिश्रीकृष्णभट्टेन विभक्त्यर्थो विविच्यते ॥ २ ॥

अथ सुब्विभक्तीनामर्थो विविच्यते । तत्र सुप्त्वं—

स्वौजसमौडित्याद्यनुशासनानुशासितप्रत्ययत्वम् ।

तार्किकास्तु—

प्रकृत्यर्थधर्मिकस्वार्थसंख्यान्वयबोधकविभक्तित्वं सुप्त्वम् ।

तिङस्तु स्वार्थभावनान्वयिन्येव स्वार्थसंख्यान्वयमवबोधयन्ति नतु स्वप्रकृत्यर्थ इति तेषां व्युदास इति वदन्ति । तन्न । पचतिकल्पं देवदत्त इत्यादौ प्रकृत्यर्थधर्मिकस्वार्थसंख्यान्वयबोधकत्वाभावेनाऽव्याप्तेः । उष्ट्रासिका आस्यन्ते, हतशायिकाः शय्यन्ते, इत्यादावुष्ट्रासनानीव देवदत्तकर्तृकान्यासनानि हतशयनानीव देवदत्तकर्तृकानि शयनानीति बोधाद्भाष्ये धात्वर्थे संख्यान्वयस्य स्वीकृतत्वात् स्वप्रकृत्यर्थभावनाधर्मिकस्वार्थबहुत्वसंख्यान्वयबोधकतिङ्विभक्तिषु अतिव्याप्तेश्च ।

विभक्तित्वं तु—

विभक्तिश्च प्राग्दिशो विभक्तिरित्यनुशासनाभ्यामनुशासितसंज्ञावत्त्वम् ।

तार्किकास्तु—

संख्यात्वावान्तरजात्यवच्छिन्नशक्तिमान्यः प्रत्ययः सा विभक्तिः ।

एकत्वत्वाद्यवच्छिन्नशक्तिमानपि तदादिर्न प्रत्ययः । प्रत्ययश्च तृजादिर्नसंख्याशक्त इति तयोर्व्युदास इत्याहुः । तन्न । त्रलादीनां संख्यात्वावान्तरजात्यवच्छिन्नशक्तिमत्त्वाभावेनाव्याप्त्यापत्तेः । न च त्रलादीनां सप्त-

म्याद्यादेशत्वान्न दोष इति वाच्यम् । सप्तम्यादेशत्वे स्थानिवद्भावेन ङित्वात् बहुतः बहुत्रेत्यादौ गुणापत्तेः ।

तत्र सुब्विभक्तिः कारकाकारकभेदेन द्विधा । तत्र*कारकाधिकारपठितकर्तृकर्मादिसंज्ञामुपजीव्य विधीयमाना विभक्तिः कारकविभक्तिः* द्वितीयादिः । प्रथमा शेषषष्ठी चाकारकविभक्तिः । उपपदविभक्तीनामत्रैवान्तर्भावः । यद्यपि शाब्दिकमते सर्वत्र क्रियापदाध्याहारः तिङ्समानाधिकरणे प्रथमेति न्यासे वा प्रथमायाः क्रियान्वयित्वरूपकारकत्वसंभवेऽपि, तथा षष्ठ्या अपि कचित्तथात्वसंभवेऽपि, न तत्कारकं व्याकरणव्यवहारप्रयोजकं प्रत्युतानिष्टावहम् । उपपदविभक्तित्वं तु पदविशेषसंबन्धेन विधीयमानविभक्तित्वम् । कारकत्वं तु संकेतविशेषसंबन्धेन कारकपदवत्त्वम् । भाष्ये कारके इत्यस्य संज्ञापरत्वेन व्यवस्थापनात् । तथा ब्राह्मणस्य पुत्रं पन्थानं पृच्छतीत्यत्र ब्राह्मणस्य संज्ञा कुतो न भवतीत्याशङ्क्याकथितशब्दोऽसंकीर्तिते वर्तते । केनासंकीर्तितं अपादानादिविशेषकथाभिः । तथा च विप्रयोगस्यापि विशेषावगतिहेतुत्वादन्वर्थसंज्ञाविज्ञानाद्वा ब्राह्मणस्य न भवति संज्ञेत्युक्तम् ।

यद्यपि अथवेत्यनेन क्रियायामित्यर्थकत्वेनापि कारके इति सूत्रं व्याख्यातम् । एवं च सप्तम्यप्युपपन्ना, तथाप्यकथितशब्दस्याप्रधानपरत्वे तद्व्याख्यानम् । न चाप्रधानत्वं सिद्धान्ते स्थितम् । तेन क्रियायामित्यर्थकत्वेन व्याख्यानं भाष्यासंमतमिति निश्चीयते । यत्तु * क्रियान्वितविभक्त्यर्थान्वितत्वं कारकत्वम् । 'सा लक्ष्मीरुपकुरुते यया परेषाम्' इत्यादौ विपत्तौ चेत्यादिनामाध्याहारेणैव बोधात्षष्ठ्यर्थस्य क्रियाकाङ्क्षाभावान्न षष्ठ्यर्थान्वयिनः कारकत्वम् । जलस्योपस्कुरुते इतिवद्विशेषक्रियायोगे वा षष्ठीति शब्दशक्तिप्रकाशिकायामुक्तम् । तन्न । क्रियान्वितत्वं किं साक्षादुत परंपरासंबन्धेनापि । नाद्यः । सप्तम्या अकारकत्वापत्तेः । नान्त्यः । षष्ठ्या अपि कारकत्वापत्तेः । सप्तम्याः कर्तृकर्मद्वारा क्रियायामन्वयः षष्ठ्याश्च नेति शपथैकगम्यत्वात् । न चेष्टापत्तिः, कारकाकारकविभागोच्छेदापत्तेः । षष्ठीप्रथमयोरपि कारकत्वात्तत्पूर्वयोरेरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्येत्यादिना यणाद्यापत्त्या सर्वोपप्लवापत्तेः । तत्र तत्र स्वरितत्वाश्रयणेन (?) दोषोद्धारे तु गौरवमेव । ननु 'सहयुक्तेऽप्रधाने' इति सूत्रे भाष्ये अप्रधानग्रहणं शक्य-

---

१ 'घेर्ङिति' इति शास्त्रेणेति शेषः ।

मकर्तु तत्र प्रधानादपि तृतीयापत्तिमाशङ्क्योपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसीति प्रथमा भविष्यतीति प्रथमायाः कारकत्वं स्पष्टमेवोक्तमिति चेन्न । तत्र कारकशब्दस्यान्तरङ्गपरत्वेनैव हरदत्तादिभिर्व्याख्यातत्वात् । अन्यथा शिष्येण सहोपाध्यायस्य गौरित्यादौ कारकविभक्त्यभावेन उपपदविभक्तेरुपपदार्थेऽन्वयनिमित्तकषष्ठीबाधकत्वेऽपि बहिर्भूतसंबन्धनिमित्तकषष्ठीबाधकत्वे मानाभाव इति कश्चित् । नापत्तेः (?)एवं च भाष्याक्षरस्वारस्याद्दुराग्रहेण यदि प्रथमायाः कारकत्वं स्वीक्रियते तर्हि तुल्यन्यायेन विसर्जनीयसूत्रे भाष्यकारेण द्वयोः परिभाषयोरित्यादिना पूर्वत्रासिद्धमित्यस्यापि स्पष्टं परिभाषात्वकथनेन तस्यापि परिभाषात्वं स्वीक्रियतां, यदि तत्र परिभाषात्वसाधर्म्यात्परिभाषापदवाच्यत्वम्, इहाप्यन्तरङ्गत्वसाधर्म्यात् कारकत्वमिति तुल्यम् । यदपि जलस्येति दृष्टान्तकथनं 'कृञः प्रतियत्ने' इत्यनुशासनसंभवेऽपि प्रकृते तदभावात् । नहि तत्र गुणाधानं संभवति । तत्त्वे वा सुट्प्रसङ्गात् । यदपि *क्रियान्वितकर्तृकर्मादिषट्कान्यतमत्वम्* इत्याहुः, तत्र क्रियान्वितविशेषणव्यावर्त्यं त एव प्रष्टव्याः । केचित्तु *क्रियाजनकत्वयोग्यताबुद्धिविषयत्वमेव कारकत्वमाहुः । तत्र योग्यता षष्ठ्यादिव्यावृत्ता दुर्वचा ।

प्रातिपदिकार्थमात्रे लिङ्गमात्राद्याधिक्ये परिमाणमात्रे संख्यामात्रे च प्रथमाविधायकात 'प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा' इत्यनुशासनादुच्चैर्नीचैः कृष्णः श्रीः ज्ञानमित्यादौ प्रातिपदिकाथमात्रे, तटः तटी तटमित्यादौ लिङ्गमात्राद्याधिक्ये, द्रोणो व्रीहिरित्यादौ परिमाणमात्रे, एकः द्वौ बहव इत्यादौ वचनमात्रे प्रथमा । तत्र प्रातिपदिकार्थत्वं प्रातिपदिकेन नियमेन वृत्त्या बोध्यत्वम् । तच्चासत्त्वभूतेषु सत्तामात्रस्य । अन्यत्र तु सत्ताद्रव्यलिङ्गानाम् । अत एव 'जात्याकृतिव्यक्तयः पदार्थः' इति न्यायसूत्रम् । ततः तटी तटमित्यादौ तु प्रातिपदिकमात्रेण नियमेनाबोधनात्प्रत्ययान्तसमभिव्याहारेणैव बोधनान्न लिङ्गस्य प्रातिपदिकार्थत्वम् । तत्र कृष्णादिनियतलिङ्गेषु त्रिकं प्रातिपदिकार्थः । तटादौ तु जातिव्यक्तीति द्विकमिति विवेकः । 'अत एव नियतोपस्थितिकः प्रातिपादिकार्थ इति ग्रन्थकृतां व्यवहारः । एवं च कौस्तुभादिसकलग्रन्थानां सौष्ठवे तद्विरोधेन लिङ्गाद्याधिक्ये इत्यस्य कृष्णः श्रीः ज्ञानमित्युदाहरणमनुचितमिति दिक् ।

ननु मृडानीहिमानीत्यादौ पुंयोगमहत्त्वादेरधिकस्य भानात्प्रथमा न स्यादिति चेत् न, तत्र पुंयोगमहत्त्वादिकं प्रातिपदिकस्यार्थः उत प्रत्ययस्य। उभयथापि प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणमिति परिभाषया तत्सिद्धेः। संबोधने चेत्यनेनाधिकार्थपरिच्छेदे तु सजातीयविभक्त्यर्थस्यैव परिच्छेदेन दोषाभावात्। ननु परिमाणग्रहणं व्यर्थं तस्य प्रातिपदिकार्थत्वादेव सिद्धेरिति चेन्न। एवं हि नामार्थयोरिति अभेदेन द्रोणपदार्थस्य व्रीहिपदार्थेन संबन्धः स्यात्। तद्व्यावृत्त्यर्थं परिमाणग्रहणात्। तथा च द्रोणपदार्थस्य प्रत्ययार्थपरिमाणे अभेदसंबन्धेनान्वयः। तस्य च व्रीहिपदार्थे परिच्छेद्यपरिच्छेदकभावेनान्वयः। नन्वेवमभेदातिरिक्तसंबन्धेनान्वये समानविभक्तित्वनियमाभावाद्द्रोणो व्रीहिमानयेति प्रयोगापत्तिरिति चेत् न। अभेदसंबन्धेन बोधव्यावृत्त्यर्थेन परिमाणग्रहणेन यत्राभेदबोधे उत्थिताकाङ्क्षा तत्रैव प्रथमाविधानात्। नन्वेवमपि द्रोणं व्रीहिमानयेत्यत्रापि नामार्थयोरभेदसंबन्धेनान्वय इति अभेदसंबन्धेनान्वयः स्यात्तदर्थं लक्षणायाः आवश्यकत्वे तयैव प्रकृतेऽपि निर्वाहे व्यर्थं परिमाणग्रहणमिति चेन्न। नामार्थयोरित्यस्य किं नामार्थयोरेवाभेदान्वयः उत नामार्थयोरभेदसंबन्धेनान्वय एव। नाद्यः वैश्वदेव्यामिक्षा, स्तोकं पचतीत्यादीनामनन्वयापत्तेः। नान्त्यः। घटपटावित्यादावन्वयापत्तेः। एवं च संभवति सामानाधिकरण्ये वैयधिकरण्यस्यान्याय्यत्वमिति भेदापेक्षयाऽभेदस्यान्तरङ्गत्वात् परिभाषामूलोपन्यासः। तथा च द्रोणं व्रीहिमानयेत्यादौ लक्षणां विनैव परिच्छेद्यपरिच्छेदकभावेनान्वयोपपत्तिः। एवं च न सूत्रकारमतभेदोऽपि। अन्यथा त्वन्मतेऽभेदः सूत्रकारमते तु भेद इति स्फुटं भेदः। मदुक्तरीत्या तु न मतभेदः न वा लक्षणा, न च परिमाणग्रहणमिति महल्लाघवम्।

यत्तु द्रोणो व्रीहिरित्यादौ पदद्वयोपस्थाप्यव्यक्त्योरेकत्वेन संबन्धाभावेऽपि विशेषणविशेष्यभावो बोध्यः। यत्तु अभेदसंबन्धेनान्वय इति तत्र तस्य संबन्धत्वे मानाभावात्। संबन्धिभेदनियतत्वात् संबन्धस्य, तस्य संबन्धत्वे नीलो घट इत्यादौ षष्ठ्यापत्तिरिति कैश्चिदुक्तं तन्न्यायविरुद्धं, युक्तिविरुद्धं, शास्त्रविरुद्धं च।

तथाहि सामानाधिकरण्ये सति स्वविशेष्यविरुद्धविभक्तिरहितनामार्थस्य प्रकारतासंबन्धेनान्वय एवाभेदसंबन्धः। सत्यन्तनिवेशात् द्रोणो व्रीहिरित्यादौ स्वविशेष्यविरुद्धविभक्तिरहितत्वेऽपि नातिव्याप्तिः। न तु अभे-

दसंबन्धो नाम पदार्थान्तरमस्ति येनाभेदसंबन्धाभावेऽपि विशेषणविशेष्यभावो बोध्य इति भवदुक्तं संगच्छेत । किंचैकत्वे यथाऽभेदस्य संबन्धत्वं नास्ति भेदघटितत्वाद्धि संबन्धस्य, तथा विशेषणविशेष्यभावसंबन्धोऽपि नास्ति घटो घट इत्यादौ निरूपकभेदाभावे एकत्र प्रकारताविशेष्यतयोरभावात् । यदि तु विरुद्धार्थकविभक्तिरहितनामार्थयोर्विशेष्यैक्येऽपि प्रकारभेदे विशेषणविशेष्यभावं ब्रूषे तर्हि स एवास्माकमभेदसंबन्धः । एतेनाभेदस्य संबन्धत्वे मानाभावः संबन्धिभेदनियतत्वात्संबन्धस्येति न्यायविरुद्धम् । विरोधस्योभयत्र तुल्यत्वात् । व्यक्त्यैक्येनिरूपकभेदाभावेऽप्यवच्छेदकभेदे विरुद्धयोः प्रकारताविशेष्यतयोः स्वीकारेऽभेदस्य संबन्धत्वाभावे विनिगमकाभावेन युक्तिविरुद्धम् । यदि तु युक्तिन्याययोरभेदं ब्रूषे तर्ह्यन्यतरन्मास्तु ।

यदपि नीलो घट इत्यादौ नीलपदोत्तरं षष्ठ्यापादनं तदपि शास्त्रविरुद्धम् । तथाहि—यदि अभेदसंबन्धे षष्ठ्येव स्यात्तदा अनेकमन्यपदार्थे इत्यनेनानेकसमानाधिकरणप्रथमान्ताभावात्समासविधानं व्यर्थं स्यात् । न च कण्ठेकालादिरवकाशः, तस्य सप्तमीविशेषणे इति पूर्वत्वविधानेनापि साधयितुं शक्यत्वात् । अतस्तदेव ज्ञापयति नाभेदसंबन्धे षष्ठीति । किंचात्र पदसंस्कारपक्षे भेदसंबन्धाभावेन प्रातिपदिकार्थत्वात्प्रथमोत्पत्तौ पश्चात्पदान्तरेणान्वये नामार्थयोरिति व्युत्पत्त्याऽभेदबोधः । तथा च तस्यामवस्थायां कारकप्रातिपदिकार्थव्यतिरिक्तरूपशेषत्वाभावात्संबन्धबोधाभावाच्च षष्ठ्याः प्राप्तेरेवाभावात् । किंच संबन्धः यत्र प्रकारतया भासते तत्र षष्ठी, प्रकृते संसर्गतया भानान्न सा । किंच वीरः पुरुष इत्यादौ यदि षष्ठी तदा समानाधिकरणविशेषणस्य विशेष्यसमानविभक्तित्वमिति नियमभङ्गापत्तिः । किंच षष्ठ्या शब्दशक्तिस्वाभाव्याद्भेद एव प्रतीयते न त्वभेदः, तस्य तद्विरुद्धत्वात् । वीरः पुरुष इत्यादौ वीरपदोत्तरं षष्ठीसत्त्वे समानविभक्त्यभावान्नामार्थयोरभेदान्वय इति व्युत्पत्त्यभावेनाभेदबोध एव न स्यात् । एवं चाद्यन्तवत्सूत्रस्थम् 'राहोः शिरः' इति व्यपदेशिवद्भावेन समर्थनभाष्यमभेदस्य संबन्धत्वाभावसाधकं भवदुक्तं नास्माकं प्रतिकूलम् । अभेदस्य संबन्धत्वेऽपि तस्य षष्ठ्यर्थत्वाभावेनभेदप्रतीत्यर्थं व्यपदेशाश्रयणस्य (पार्थगदाधरप्रभृतयः स्यात् ? आवश्यकत्वात्) । नतु षष्ठ्यर्थ एव संबन्ध इति नियमः, येन षष्ठ्यभावादभेदस्य संबन्धत्वं न स्यात् । सामीप्यस्य संबन्धत्वेऽपि भवद्भिस्तस्य षष्ठ्यर्थत्वास्वी-

कारात्। तस्माद्विशेषयुक्त्यभावेन सर्वशास्त्रकारविरुद्धमभेदस्य संबन्धत्वाभाववचनमयुक्तमिति दिक्।

संबोधने प्रथमाविधायकात्संबोधने चेत्यनुशासनाद्राम मां पाहीत्यादौ प्रथमा। तत्र—

वक्तुरिच्छाविषयप्रकृत्यर्थसमवेतं प्रकृतशब्दजन्यं ज्ञानम्।

तथा च वक्तुरिच्छाविषयरामसमवेतज्ञानविषयो मत्कर्मकं रक्षणमिति बोधः। अन्ये गदाधरप्रभृतयस्तु * वक्तुरव्यवहितशब्दजन्यबोधाश्रयत्वेनेच्छा प्रथमार्थः। तादृशेच्छायाः विषयतासंबन्धेन प्रकृत्यर्थविशेषणतया भानम्। तथा वक्तुरव्यवहितशब्दजन्यबोधाश्रयत्वेनेच्छाविषयो राम इति बोध इत्याहुः। संबोध्यत्वं च समवायसंबन्धेन वक्तुरिच्छाविषयप्रकृत्यर्थसमवेतप्रकृतशब्दजन्यज्ञानाश्रयत्वं, तादृशेच्छाविषयत्वं वा।

केचित्तु संबोधनम् * अभिमुखीकृत्याज्ञातार्थज्ञानानुकूलव्यापारानुकूलो व्यापारः * तद्व्यापारजन्यज्ञानानुकूलव्यापाराश्रयत्वं संबोध्यत्वम्। राम त्रायस्वेत्यादौ रामसंबोधनविषयत्राणमिति बोधः। अभिमुखीकरणं च स्ववचनार्थग्रहणे सादरत्वकरणं, तद्व्यञ्जकं च मुखपरावृत्त्यादीत्याहुः। तन्न, हा देवि धीरा भवेत्यसन्निकृष्टे तदसंभवात्। न च बुद्ध्या संभवः, संबोधनसंबोध्याभिमुखीकरणादीनां सर्वेषां बुद्धिविषयत्वस्यानुचितत्वात्। ननु राम मां पाहीत्यादौ मध्यमपुरुषानुपपत्तिः। न च युष्मत्समानार्थसंबोधनस्य विद्यमानत्वात्तत्सिद्धिः। तत्समानार्थे भवच्छब्दयोगेऽपि तदापत्तेः। एतेन 'त्वामस्मि वच्मि विदुषाम्' इत्यादावहमर्थकास्मीत्यव्यययोगे उत्तम इति प्रदीपोक्तमपास्तम्। तत्समर्थने आग्रहश्चेदित्थं समर्थ्यताम्—अहमर्थकमहंशब्दार्थकं, तथा चाहंशब्देनैवास्मदर्थप्रतिपादनादस्मत्सामानाधिकरण्यादुत्तम इति। अत एव अहमर्थकमित्येवोक्तं, न तु अहमर्थार्थकमिति। न च प्रतीतस्य प्रत्यायकत्वं नास्ति, अन्यथा ऋचं वेत्तीत्यादौ ऋगर्थं वेत्तीति प्रत्ययापत्तिः। लिप्या प्रतीतस्य शब्दस्य, तथा ध्वनिभिः प्रतीतस्य स्फोटस्य, प्रतीतानां च वाच्यलक्ष्यव्यङ्ग्यानां व्यङ्ग्यार्थप्रतिपादकत्वेन, तार्किकरीत्या असाधुभिः प्रतीतस्य साधुशब्दस्य, आदेशेन प्रतीतस्य स्थानिनोऽपि प्रत्यायकत्वदर्शनेन तादृशनियमे प्रमाणाभावात्। न चाणुदित्सूत्रस्थभाष्यविरोधः।

तस्याधुनिकशब्दसंज्ञया प्रतीतस्य तात्पर्यानुपपत्तिग्रहं विना प्रत्यायकत्वाभावपरत्वात् । यद्वा वृत्तिं विना प्रकृत्या प्रतीतस्य प्रत्ययानुपयोग्यत्वाभावात् (?) प्रत्यायकत्वं शाब्दबोधजनकत्वं नास्तीति भाष्यार्थः । ऋचं वेत्तीत्यादौ सति तात्पर्येऽर्थबोधे इष्टापत्तिः । शक्त्या लक्षणया वेत्यन्यदेतत् । अन्यथा शब्दप्रतीतस्य स्फोटस्यार्थप्रत्यायकत्वं भाष्याद्युक्तमसंगतं स्यात् । परंतु ऋगादिशब्दानामर्थपरत्वे तावद्भक्तिः स्वीकार्या द्विरेफादिवत् , अन्यथा प्रत्ययानां प्रकृत्यर्थान्वितस्वार्थबोधकत्वमिति नियमात्तत्र प्रत्ययार्थान्वयो न स्यात् । अत एवेको यणचीत्यत्र तद्वाच्यवाच्ये निरूढलक्षणेत्युक्तम् । तत्र निरूढं लक्षणं अणुदिदिति सूत्रं यस्याः बोधकमिति तदर्थः । एतेनाणुदित्सूत्रस्थ–' प्रतीतस्य प्रत्यायकत्वं नास्तीति '–भाष्याद्रहसि पुस्तकमीक्षमाणस्य स्वीयसूक्ष्मोच्चारणमस्त्येवेति वैयाकरणनव्योक्तमपास्तम् । भाष्यस्यान्यथैवोपपत्तेः । तस्मात्त्वंपदाध्याहारेणैव मध्यमः । न च–भो ब्राह्मणास्त्वं पचेत्यापत्तिः, न च संबोध्याख्यातकारकयोः समानवचनत्वनियमः भो ब्राह्मणाः चैत्रो गच्छतीत्यनापत्तेरिति–वाच्यम् । त्यदादीनां परामृश्यमानसमानवचनत्वनियमात् ।

ननु (अनवसरः ?रक्षसः) शक्तिनिर्भिन्ने वत्से जहति चेतनाम् । हताश राम कस्यार्थे दग्धं जीवितमिच्छसीत्यादौ वक्तृसंबोध्ययोरेकत्वेन प्रकृतवाक्यार्थज्ञानसत्त्वासिद्धे वक्तुरिच्छाविरहात् रामस्य संबोध्यत्वानुपपत्तिरिति चेन्न । आत्मानमात्मना वेत्सीत्यादाविव लक्ष्मणविशिष्टराममूर्च्छितलक्ष्मणविशिष्टरामयोर्भेदाभ्युपगमेन संबोध्यत्वसंभवात् । एवं च प्रथमाया अप्यर्थसंभवे–

आश्रयोऽवधिरुद्देश्यः संबन्धः शक्तिरेव वा ।

इत्यादौ षण्णामेव कथने प्रथमायास्तदनुक्तौ भूषणकारस्य बीजाभावान्न्यूनतेति बोध्यम् । ननु ' तिङ्समानाधिकरणे प्रथमा ' इतिन्यासे यथावस्थितन्यासे वा प्रथमान्तस्य क्रियान्वयाकाङ्क्षाया नियतत्वात्, आख्यातसंख्ययैवाख्येयगतसंख्याबोधोपपत्तौ प्रथमायाः संख्यावाचकत्वं किमर्थमिति चेत् न, चैत्रो मैत्रश्च गच्छत इत्यादावाख्यातोपात्तद्वित्वसंख्याविरुद्धैकत्वसंख्याबोधाय तदावश्यकत्वात् ।

इति प्रथमा ।

द्वितीयार्थनिर्णयः ।

कृत्तद्धितसमासनिपातादिभिरनभिहिते कर्मणि द्वितीयाविधायककर्मसंज्ञकेद्वितीयेत्यर्थक 'कर्मणि द्वितीया' इत्याद्यनुशासनानुशासितद्वितीयायाः कर्मसंज्ञका अन्ये च वाच्याः । तं चानेके नत्वाश्रयत्वमात्रम् । अक्षान्दीव्यति उभयतः कृष्णमित्यादौ तदभावात् । एतेनाश्रयोऽवधिरुधिदेश्य इत्यत्राश्रयोऽर्थ इति भूषणोक्तमपास्तम् । न चार्थान्तरे लक्षणा शक्तिग्राहकानुशासनतुल्यत्वे विनिगमकाभावेनैकत्र लक्षणान्यत्र शक्तिरिति वक्तुमशक्यत्वात् । नानार्थोच्छेदापत्तेः । अत एव कर्मत्वमपि न *क्रियाजन्यफलशालित्वमात्रं, किंतु—

कर्त्रा स्वनिष्ठव्यापारजन्यफलेनात्यन्तं संबद्धुमिष्यमाणं कर्मेत्याद्यर्थककर्तुरीप्सिततमं कर्मेत्याद्यनुशासितसंज्ञावत्त्वम् ।

एवं चौदनं पचतीत्यादावेकाश्रयक ओदननिष्ठविक्लृत्यनुकूलो व्यापारः । पच्यते ओदन इत्यत्राप्येवमेव ।

तार्किकास्तु—देवदत्ताश्रितव्यापारजन्यविक्लृत्याश्रय ओदन इति बोधमाहुः ।

केचित्तु—देवदत्तनिष्ठव्यापारजन्यौदननिष्ठा विक्लृत्तिरिति बोधः । तत्र च सुप आत्मनः क्यजिति सूत्रस्थं भाष्यं मानम् । तथाहि—इष्यते पुत्र इत्यर्थे पुत्रीयतीति न प्रयोगः भिन्नार्थत्वात् । किंतु पुत्रमिच्छतीत्यर्थे एव । एतच्च कर्मलकारे एकाश्रयिका पुत्रकर्मिकेच्छेति बोधे फलविशेष्यक एव संगच्छते । अन्यथोभयत्रापि एकाश्रयकपुत्रकर्मकेच्छानुकूलो व्यापार इति बोधस्य तुल्यत्वात् 'भिन्नार्थत्वात्' इति भाष्यमसंगतं स्यादित्याहुः । तन्न, भाष्यकैयटयोरन्याभिप्रायकत्वात् । तथाहि—वृत्तिवाक्ययोः समानार्थत्वमित्यस्य वृत्ति(विशेष्य?प्रकृतिक)पदेन समानार्थत्वमित्यर्थो वाच्यः । अन्यथा कुम्भकारादावपि समानार्थत्वं न स्यात्तत्र हि वाक्ये एकत्वप्रतीतिः न तु कुम्भकारेत्यणन्तवृत्तौ । विभक्त्यन्तेन तु समानार्थत्वसद्भावात्पूर्वोक्त एवार्थो न्याय्यः । तथा च पुत्रीयतीत्यादौ एककर्तृकपुत्रकर्मकेच्छानुकूलो व्यापार इति बोधः । इष्यते पुत्र इत्यादौ तु एकपुत्रकर्मकेच्छानुकूलो व्यापार इति बोधः । एवं च भिन्नार्थता स्पष्टैव । एतादृश्येव भिन्नार्थता भाष्यसंमता । भवदुक्तप्रकारता—विशेष्यताकृत एव भेदो वृत्त्यभावनियामकः भाष्यसंमतः स्यात्तर्हि पचतीति पाचक इत्यादौ वाक्ये क्रियाविशेष्यत्वेन, वृत्तौ

तदाश्रयविशेष्यत्वेन भिन्नार्थत्वात्कर्मकर्तृकृत्प्रत्ययादौ क्वापि वृत्तिर्न स्यात् । नच तत्र देवदत्तपदाध्याहारेण समानार्थत्वमिति वाच्यम् । लाघवात्पदद्वयघटितसमानविग्रहे चरितार्थो विधिः पदत्रयघटितविग्रहे न प्रवर्तते । अत एव भाष्ये इष्यते पुत्र इत्येवोक्तं, न तु देवदत्तेनेति । किं च पच्यतेकल्पं देवदत्तेन इत्यादौ कल्पबादीनां धात्वर्थविशेष्येऽन्वयस्य क्लृप्तत्वेन फलेऽन्वयापत्तेः । न चेष्टापत्तिरपसिद्धान्तादनुभवविरोधाच्च । किंच क्रियाप्रधानमाख्यातमिति निरुक्तविरोधः । न च फलेऽपि क्वचित्क्रियापदप्रयोगः । तस्य लाक्षणिकत्वेन तमादाय निरुक्तसमर्थनस्यानुचितत्वात् । किंच देवदत्तेन किं क्रियते पचतीत्युत्तरस्य संगतिश्च । इत्यभिप्रेत्यैव मनोरमा–भूषण–कौस्तुभादिसकलग्रन्थेषु ओदनं पचति, पच्यते ओदनः, इत्यादौ समानो बोध इत्युक्तम् । एवं च सर्वग्रन्थानुकूलभाष्यनिर्वाहे तद्विरुद्धं स्वातन्त्र्येण भाष्यसमर्थनमनुचितमिति दिक् ।

घटं जानातीत्यादौ घटविषयकज्ञानानुकूलो व्यापार इति बोधः । ज्ञानजनकव्यापारश्च मनश्चक्षुःसंयोगादिः । अत एव मनो जानातीत्यादयः प्रयोगाः । तत्र ज्ञानरूपफलाश्रयत्वाद्घटादेः कर्मत्वम् । न च फलव्यापारयोः सामानाधिकरण्यादकर्मकतापत्तिः । कालिकादिसंबन्धेन सर्वेषां फलसामानाधिकरण्यसत्त्वादकर्मकत्वापत्त्या फलतावच्छेदकसंबन्धेन सामानाधिकरण्यवैयधिकरण्ययोः सकर्मकाकर्मकलक्षणेऽवश्यं निवेशनीयत्वात् । प्रकृते च फलतावच्छेदकः संबन्धो विषयता, व्यापारतावच्छेदकः समवायादिरिति वैयधिकरण्यं स्पष्टमेव । अत एव ज्ञानस्य घटात्मोभयवृत्तित्वेऽपि कर्मप्रत्ययेन विषयतासंबन्धेन ज्ञानाश्रयघटस्यैवाभिधानाद्घटो ज्ञायत इति प्रयोगः, न तु आत्मा ज्ञायत इति । तथा कर्तृप्रत्ययेन समवायसंबन्धेन ज्ञानाश्रयस्याभिधानादात्मा जानातीति प्रयोगः, न तु घटो जानातीति । यद्वा ज्ञानेच्छादिरेव व्यापारः । ज्ञातो घट इति प्रतीत्या तज्जन्या ज्ञाततादि फलं तदाश्रयत्वाद्घटादेः कर्मत्वम् । यत्तु केचिदाहुः—भावकार्यस्य समवायिकारणकत्वनियमात् भूतं भाविनं घटं जानामीति प्रयोगानापत्तिरित्यादि तत्तुच्छं, ध्वंसस्य प्रामाणिकत्वेन भावत्वस्य कार्यतावच्छेदककोटिप्रवेशवद्विज्ञानविषयताया अपि प्रामाणिकत्वेन समवेतत्वेनैव लघुना कार्यत्वस्यविशेषितत्वात् । अत एव ध्वंसवदेव ज्ञातताया अपि निमित्तकारणमात्रजन्यत्वमित्यन्यत्र विस्तरः ।

केचित्तु घटं जानातीत्यादौ कर्मत्वव्यवहारो भाक्त इत्याहुः।

अन्ये तु द्वितीयायाः विषयतायां लक्षणेत्याहुः। तदुभयमप्यसत् व्यवहारस्य भाक्तत्वेऽपि द्वितीयानुत्पत्तिप्रसङ्गात्। न च कर्मणि द्वितीयेत्यादौ मुख्यभाक्तसाधारणकर्मत्वग्रहणात्तत्सिद्धिरिति वाच्यम्। अनुशासनानुशासितसंज्ञाव्यतिरिक्ते द्वितीयायाः असाधुत्वबोधनात्, संज्ञाया एव तदुत्पत्तौ प्रयोजकत्वात्। अन्यथा देवदत्ताय क्रुध्यति, पाचयत्योदनं देवदत्तेन विष्णुमित्र इत्यादौ द्वितीयोत्पत्तेर्दुर्वारत्वात्। द्वितीयायाः लक्षणेत्यपि न, भवद्रीत्या घटं जानातीत्यादौ द्वितीयोत्पत्त्यभावेन तल्लक्षणायाः वक्तुमशक्यत्वात्। स्वायत्ते शब्दप्रयोगे किमित्यवाचकं प्रयुञ्ज्महे इति न्यायेनास्ति लक्षणायां बीजाकाङ्क्षा। तच्च रूढिः प्रयोजनं वा। प्रकृतेऽनुशासनविरोधेन द्वयस्याप्यभावेन लक्षणायाः अभावाच्च, द्वितीयायाः लक्षणा अन्यासां नेत्यत्र विनिगमकाभावाच्च, विभक्तौ न लक्षणेति सिद्धान्तव्याघातश्च। न च विभक्त्यर्थातिरिक्तार्थे सा नेति वाच्यम्। संकोचे मानाभावात्।

यत्तु मीमांसकैः सक्त्वधिकरणे उक्तं—साध्यत्वं द्वितीयार्थः, सक्तून् जुहोतीत्यादौ सक्तूनां भूतभाव्यनुपयुक्तत्वेन सक्तूनां साध्यसक्तुकरणकहोमानुकूलव्यापारप्रतीतये करणत्वं लक्ष्यते, एवमग्निहोत्रं जुहुयादित्यत्र द्वितीयया साधनत्वं लक्ष्यते इति तन्न, सुपां सुलुगिति व्यत्ययानुशासनेनैव सिद्धे लक्षणाश्रयणस्यानुचितत्वात्।

यत्तु व्युत्पत्तिवादे—'चाक्षुषत्वाद्यवच्छिन्नवाचकदृश्यादिपदसमभिव्याहृतद्वितीयायाश्च लौकिकविषयिता, तादृशकर्माख्यातस्य लौकिकविषयत्वमर्थः। उपनीतसौरभादिविषयकसुरभिचन्दनमित्याकारकचाक्षुषादिदशायां सौरभं पश्यति सौरभो दृश्यते इत्याद्यप्रयोगात्' इत्युक्तम्। तच्चिन्त्यम्। 'पश्यार्थैश्चानालोचने' इति सूत्रे 'तस्मिन्दृष्टे परावरे' इत्यादौ च दृश्धातोरप्यलौकिकविषयकतार्थकत्वदर्शनेन सौरभं पश्यतीत्यादीनामपि साधुत्वस्वीकारे बाधकाभावः। अन्यथा सुरभि चन्दनं पश्यतीत्यादौ सुरभिपदोत्तरं कटोऽपि कर्म भीष्मादयोऽपीति मुख्यभाष्यमते द्वितीया न स्यात्। तव मतेऽपि लक्षणया तादृशप्रयोगस्य साधुत्वस्वीकाराच्च।

पुष्पं जिघ्रतीत्यादौ पुष्पपदस्य पुष्पवृत्तिगन्धे लक्षणा। धात्वर्थस्तु गन्धोपलक्षितप्रत्यक्षानुकूल आत्ममनःसंयोगादिरूपो व्यापारः। तथा चैकदेवदत्ताश्रयकपुष्पवृत्तिगन्धविषयकप्रत्यक्षानुकूलो व्यापार

इति बोधः । वृत्तित्वं संसर्गः । व्युत्पत्तिवादे तु घ्राधातुसमभिव्याहृतद्वितीयायाः आधेयत्वमर्थः । तस्य व्युत्पत्तिवैचित्र्येण धात्वर्थैकदेशे गन्धेऽन्वयः । एवं च पुष्पवृत्तिगन्धलौकिकप्रत्यक्षाश्रय इति बोधः इति । तन्न । गन्धस्य धातुवाच्यत्वे धात्वर्थसंगृहीतकर्मत्वेन नृत्यादिवदकर्मकत्वापत्तेः । पुष्पपदोत्तरं द्वितीयानापत्तेश्च । आमोदमुपजिघ्रतीत्यत्रोपसर्गवशेन धातोर्ज्ञानमात्रमर्थः । तथा चामोदविषयकज्ञानानुकूलो व्यापार इति बोधः । अथवाऽऽमोदग्रहणानुकूलो व्यापार इति बोधः ।

कर्म सप्तविधं–निर्वर्त्यं, विकार्यं, प्राप्यम्, औदासीन्यप्राप्यं, कर्तुरनीप्सितं, संज्ञान्तरैरनाख्यातं, अन्यपूर्वकमिति ।

तत्र निर्वर्त्यं घटभस्मादिरूपं, विकार्यं मृत्काष्ठादिरूपं, प्राप्यं रूपं पश्यतीत्यादि, औदासीन्यप्राप्यं तृणं स्पृशतीति, कर्तुरनीप्सितं विषं भुङ्क्ते, संज्ञान्तरैरनाख्यातं गां दोग्धि पय इत्यत्र गोरूपं, अन्यपूर्वकमधितिष्ठति वैकुण्ठमित्यादि ।

ननु मृत्काष्ठयोर्विकार्यकर्मत्वमयुक्तं क्रियाजन्यफलाश्रयत्वाभावादिति चेत् न । प्रकृतिविकृत्योर्निरूढयाऽभेदविवक्षयोत्पत्त्याश्रयत्वात् । भूषणे काष्ठानि विकुर्वन्भस्म करोतीत्यर्थः । तण्डुलान्विक्लेदयन्नोदनं निर्वर्तयतीतिवत् । एतच्च द्व्यर्थः पचिरिति प्रक्रम्य भाष्ये व्युत्पादितमित्युक्तम् । वैयाकरणनव्यैरपि तदेवानुसृत्य-अत्र प्रधानकर्मणि लादयः 'प्रधानकर्मण्याख्येये लादीनाहुर्द्विकर्मणाम्' इति भाष्योक्तेः । प्रधानकर्मत्वं चात्र कर्तृप्रत्ययसमभिव्याहारे प्रधानभूतव्यापारविशेषणफलाश्रयत्वम् । एतद्विषये ईदृशप्राधान्यस्यैव ग्राह्यत्वात् । तच्चोक्तोदाहरणयोर्निर्वर्त्यमानौदनभस्मनोरेव । तन्निष्ठविशेषणकव्यापारस्यैव तत्सूत्रस्थभाष्येण शाब्दप्राधान्यप्रतीतेः, तण्डुलरूपे कर्मणि लादय इति नव्यानां प्रमाद एव । दुहादिषु भाष्ये गणनाभावाच्च–इत्युक्तं तन्न । दुहादिपरिगणितधातुव्यतिरिक्तानां णिजन्तभिन्नानां करोत्यादिषु पाठस्वीकारात् ।

ननु कटं भीष्मं करोतीति कटोऽपि कर्म भीष्मादयोऽपीति भाष्यरीत्या प्रयोगस्तुल्य इति चेत् किं चातः । नहि सः अन्यतरकर्मणि लकारसाधकः अन्यथा भीष्मं कटः क्रियते इति प्रयोगापत्तेः । एवं चात्र प्रधानकर्मणि लादय इत्यविचारताभिधानं, प्रधानकर्मण्याख्येय इति भाष्यं

नीहृकृष्वह्विषयकमिति कैयटादिसकलग्रन्थकारैर्व्याख्यातत्वात् । तदुपमर्देनान्यथाव्याख्याने दृढतरप्रमाणाभावात् । एवं च तण्डुलरूपे कर्मणि लादय इति नव्यानां प्रमाद एवेति वदतामेव प्रमादः ।

ननु भाष्यकारेण दुहादिषु अपाठात्कथं तण्डुलरूपे कर्मणि लादय इति चेत् भाष्यपाठस्योपलक्षणत्वात् । अत एव चकारेण संग्रह इति कैयटादयः । ननु तर्हि ' द्व्यर्थः पचिः ' इति भाष्यं व्यर्थं, पाठेनैव द्विकर्मकतायाः सिद्धत्वादिति चेन्न । पचिरेव द्व्यर्थः नान्य इत्यभिप्रायपरत्वात् । तेन पयःकर्मकं गोसंबन्धि दोहनमिति बोधे एव गां दोग्धि पय इत्यस्य साधुत्वं न तु गोकर्मकपयःकर्मकमिति बोधेऽपीति विशेषसद्भावात् । ननु दुहादीनां द्व्यर्थत्वाभावे ' अपादानमुत्तराणि *गां दोग्धि* ' इति विप्रतिषेधसूत्रस्थभाष्यम् 'अवधित्वफलाश्रयत्वयोर्युगपद्विवक्षायां चेदम् ' इति कैयटश्च विरुध्येतेति चेन्न । पयोरूपकर्मणोऽविवक्षायां गौरेव कर्तुरीप्सिततमं कर्मेति कर्मत्वप्राप्तौ तत्संभवात् । अत एव भाष्ये गां दोग्धीत्येवोक्तं न तु पय इति । एतेन दुहेरपि अन्तःस्थितद्रवद्रव्यविभागानुकूलव्यापारानुकूलव्यापारार्थत्वे गां दोग्धि पय इत्यादौ गोपयसोरुभयोरप्यनेन कर्मत्वं, गोः कर्तृव्यापारजन्यफलाश्रयत्वात्, पयसस्तु प्रयोज्यफलाश्रयत्वात् । गोर्विभागाश्रयत्वेन तु न कर्मत्वं पयोनिष्ठविभागीयसंबन्धस्यैव फलतावच्छेदकत्वात् । तत्त्वेनानुद्देश्यत्वान्न(?)उक्तप्राधान्यं गोरिति तत्र लादयः । एवमन्येषामपि दुहादीनां जिदण्ड्यादीनां च द्विकर्मत्वं बोध्यम् । गर्गाः शतं दण्ड्यन्तामित्यत्रोक्तप्राधान्यं गर्गाणामिति तत्र लादयः । उद्देश्यत्वरूपमार्थं प्राधान्यं शतस्येति अनुद्देश्यत्वेनाप्रधानगर्गानुरोधान्न शतावृत्तिरिति न वृद्धिसूत्रस्थभाष्यविरोधोऽपीति नव्योक्तमपास्तम् । एवंविधस्वेच्छयानेकविधप्रयोज्यव्यापारस्वीकारे तृतीयचतुर्थप्रयोज्यव्यापारेण गां दोग्धि पयः यज्ञदत्तं विष्णुमित्रं देवदत्त इत्यादिप्रयोगापत्तेः । व्यापारद्वयार्थत्वमेवेत्यत्र नियामकाभावात् । न च गत्यादिसूत्रेण निस्तारः, तस्य ण्यन्तविषयत्वात् । अन्यथा त्वद्रीत्या गोरपि कर्मत्वं न स्यात् । किं च पचतीतिवद्दुहादीनामपि द्व्यर्थत्वेऽभिप्रेते द्व्यर्थः पचिरितिवद्द्व्यर्थानामिति वदेन्न तु द्विकर्मणामिति । तथाकथनेन दुहादीनां फलद्वयानुकूलव्यापारार्थत्वं न किंतु अकथितकर्मणा द्विकर्मकत्व-

मिति स्पष्टं प्रतीयते । अस्तु वा द्विकर्मकत्वं तथापि गोः प्रधानकर्मत्वाभिधानमनुचितमेव । तथात्वे हि 'प्रधाने नियता षष्ठी गुणे तूभयथा भवेत्' इति भाष्याद्गोरूपे कर्मणि नित्यं षष्ठी स्यात् । तथा च गां पयसो दोग्धेति प्रयोगो न स्यात् । न चात्रानुद्देश्यत्वरूपगौणकर्मत्वमादाय प्रयोगोपपत्तिरिति वाच्यम् । पयसः शाब्दमप्राधान्यमादाय षष्ठीविकल्पापत्तौ गोः पयो दोग्धेत्यस्याप्यापत्तेः । प्रकृते च शाब्दाप्राधान्यस्यैवोचितत्वाच्च । एतेन—

दुहादिभ्यः प्रत्ययेन मुख्यं कर्मत्वमुच्यते ।
णिजन्तेभ्यः कर्तृताख्यं तदसत्त्वेऽन्यकर्मता ॥

दुहाद्युत्तरप्रत्ययेन मुख्यं साक्षाद्धात्वर्थतावच्छेदकं यत्कर्मत्वं तदेवोच्यते धात्वर्थविशेष्यत्वेनानुभाव्यते । तेन गौः पयो दुह्यते दुग्धा वेत्यत्र पयःकर्मकमोचनानुकूलव्यापारजन्यमोचनवती गौरित्येव बोधः । तत्र मोचनावच्छिन्नव्यापारस्य धातुवाच्यतया मोचनस्यैव साक्षाद्धात्वर्थतावच्छेदकफलत्वादित्यादिव्युत्पत्त्यैव संपत्तौ दुहादेर्गौणं कर्म, नीवहादेः प्रधानं कर्मेत्याद्युक्तिभेदेन विधिद्वयं शाब्दिकानामनादेयमिति शब्दशक्तिप्रकाशिकायां जगदीशोक्तमनादेयं, गोः प्रधानकर्मत्वे षष्ठीविकल्पो न स्यात् । किंच पचतिवत्करोतेर्द्व्यर्थत्वे तण्डुलान्पचतीतिवद्विकाररूपकरोत्यर्थमादाय काष्ठं करोतीति प्रयोगापत्तिः । तस्मात्प्रकृतिविकृतिस्थलेऽभेद एव शरणम् । (उभयगतैकैव कर्तृकर्मादिकारकशक्तिः प्रकृतिविकृत्योरभेदत्वादित्यर्थः ।) अन्यथा विकृतिगतकर्तृत्वस्योक्तत्वेऽपि प्रकृतिगतस्यानुक्तत्वात्तृतीयाप्रसङ्गः । अत एव सुवर्णपिण्डः खदिराङ्गारसदृशे कुण्डले भवत इति भाष्यम् । कारकशक्तिभेदे तु अन्यतरकारके लकारापत्तिः । तथा च प्रयोगासंगतिः स्पष्टैव । एवं च काष्ठानि भस्मराशिः क्रियते इति प्रयोगः । नच 'गृह्णाति वाचकः संख्यां प्रकृतेर्विकृतेर्नहि' इति वचनविरोधः । तस्य चान्तमात्रविषयत्वात् (?) । तत्र मानं तूक्तभाष्यमेव ।

एतेनैको वृक्षः पञ्च नौका भवतीति भूधातूत्तरमेकवचनं प्रयुञ्जानाः परास्ताः । प्रकृतिविकृतिभावव्यतिरिक्तोद्देश्यविधेयभावस्थले तूद्देश्यसंख्यासमानवचनत्वमाख्यातस्य । अत एव शास्त्राणि चेत्प्रमाणं स्युरित्यादयः प्रयोगाः ।

यत्तु प्रकृतिविकृतिभावस्थले कर्माख्यातेन प्रकृतेः कर्मत्वमेव प्रत्या-

ध्यते । अतः काष्ठानि भस्मराशिः क्रियन्ते इत्यादावाख्यातार्थविशेष्यकाष्ठादिवाचकपदसमानवचनत्वमाख्यातस्य न तु निर्वर्त्यभस्मादिरूपविकारवाचकपदसमानवचनता । अथैवं निर्वर्त्यवाचकपदात्प्रथमा न स्यात् । तत्कर्मतायाः लकारेणानभिधानादिति चेत्सत्यं, काष्ठं भस्म क्रियत इत्यादौ भस्मादिनिर्वर्त्यकर्मताया लकारेणानभिधानेऽपि तत्कर्मतायाः धात्वर्थसंसर्गतया भानोपगमेन तादृशकर्मोत्तरं प्रथमायाः साधुता, प्रातिपदिकार्थविशेष्यतया कर्मत्वादिविवक्षायामेव द्वितीयादिविभक्तेः साधुत्वात् । न च धात्वर्थे नामार्थस्य साक्षादन्वयोऽव्युत्पन्न इति प्रकृते संसर्गतया भानं न संभवतीति वाच्यम् । घटो नीलो भवतीत्यादौ भवनादिक्रियायां नीलादेः कर्तृतासंबन्धेन साक्षादन्वयवदत्रापि व्युत्पत्तिवैचित्र्येण कर्मान्तरविशेषणतापन्नक्रियायामपरकर्मणः कर्मतासंबन्धेनान्वयोपगमात् । न चैवमपि कर्मत्वस्य प्रकृत्यर्थविशेष्यत्वेन विवक्षायां काष्ठं भस्मराशिं क्रियते इति प्रयोगापत्तिः । कर्मान्तरविशेषणतानापन्नक्रियायामेव द्वितीयया कर्मत्वं बोध्यत इति व्युत्पत्तिकल्पने गौर्दुह्यते क्षीरमजा नीयते ग्राममित्यादिदोहननयनादिक्रियायां क्षीरग्रामादिकर्मत्वानन्वयप्रसङ्ग इति वाच्यम् । प्रकृतिविकृत्युभयकर्मस्थले तथा व्युत्पत्तेः । यथोक्तातिप्रसङ्गवारणाय दर्शिता व्युत्पत्तिः कल्प्यते । तथा कर्तृविशेषणतानापन्नक्रियायामेव कर्तृत्वान्वय इत्यपि व्युत्पत्तिः कल्प्यते । अन्यथा प्रकृत्यर्थविशेष्यतया कर्तृत्वविवक्षया काष्ठं भस्मना भवतीति प्रयोगस्य दुर्वारत्वात् '—इति व्युत्पत्तिवादे उक्तम् । तत्र प्रकृतेः कर्मत्वमेव बोध्यते इत्यत्र मानाभावात् । प्रत्युत ' सुवर्णपिण्डः खदिराङ्गारसदृशे कुण्डले भवतः ' इति भाष्योदाहरणविरोधश्च । यदपि नीलो घटो भवतीत्यादौ व्युत्पत्तिवैचित्र्येण नीलस्य कर्तृतासंबन्धेन भवने तस्याश्रयतासंबन्धेन घटेऽन्वयः । तथा च नीलकर्तृकभवनाश्रयो घट इत्युक्तम् । तदपि न, विना प्रमाणं व्युत्पत्तेर्बोधायोगात् । न चान्वयानुपपत्तिर्मानम्, नीलघटयोरभेदबोधोत्तरं भवनस्याश्रयतासंबन्धेन विशिष्टेऽन्वयेऽपि ' सविशेषणे विधिनिषेधौ विशेषणमुपसंक्रामतः सति विशेष्ये बाधे ' इति न्यायेन विशेषणे एवान्वयो भविष्यति स्वर्गी ध्वस्त इत्यादौ यथा ।

वस्तुतस्तु तादृशव्युत्पत्तौ मानाभावः । ओदनः पचतीत्यादौ तार्किकरीत्या पाके ओदनस्य कर्मतासंबन्धेनान्वये विवक्षिते प्रातिपदिकार्थत्वाभावेन प्रथमाया अनुत्पत्तौ तादृशप्रयोगस्यासाधुत्वाच्छाब्दबोधजनक-

त्वाभावेनादोषात् । शक्तिभ्रमात्साधुशब्दस्मरणाद्वा बोधे इष्टापत्तिरेव त्वया वाच्या । शाब्दिकमते तु तादृशप्रयोगाभावादेवादोषात् ।

यत्तु मासं व्याप्यौदनं पचतीत्यर्थे मासमोदनं पचतीति भवत्येवेति हेलाराजमतानुसारेण नव्यैरुक्तं तन्न । भाष्येऽकर्मकेति प्रत्याख्यानाया-कर्मकधातूनां व्याप्त्यादिफलवाचकत्वस्वीकारेऽपि पचत्यादीनां तथा स्वीकारे मानाभावः । वार्तिककारमते व्याप्त्यादिफलस्य धात्वर्थत्वाभावेन तादृशप्रयोगाभावे निश्चिते, फलभेदे प्रत्याख्यानायोगे भाष्यस्यापि अकर्मकविषयतैवेति निश्चितत्वात् । मासं तण्डुलानोदनं पचतीति त्रिकर्मकप्रयोगे इष्टापत्तिश्चेदास्तां तावत् ।

प्रकृतमनुसरामः । प्राप्यं रूपं पश्यतीत्यादि । अत्र वेदान्तिनये आवरणभङ्गानुकूलो व्यापारश्चाक्षुषज्ञानरूपो दृशधातोरर्थः । तथा चावरणभङ्गाश्रयत्वाद्रूपादेः कर्मत्वम् । न चैवमीश्वरो रूपं पश्यतीति प्रयोगो न स्यात् । ईश्वरे आवरणभावेन तद्भङ्गानुकूलव्यापाराभावादिति चेन्न । विषयगुण्ठनपटवद्विषयगतमेवाज्ञानं तदावारकं न तु पुरुषाश्रितमित्यज्ञानभेदस्वीकारेणेश्वरेऽज्ञानाभावेऽपि विषये तत्सत्त्वात्प्रयोगोपपत्तिः । न च नयनपटलवत्पुरुषाश्रितमेवाज्ञानं, न तदतिरेकेण विषयगताज्ञाने प्रमाणमस्तीति मते दोष एवेति वाच्यम् । तत्राज्ञानारोपेण प्रयोगोपपत्तिः । दृश्यते हि पुराणादौ रामकृष्णादीनामीश्वराणामप्यज्ञानवर्णनम् ।

ईप्सिततमवत्क्रियया युक्तानीप्सितस्यापि कर्मसंज्ञाविधायकात् ‘तथा युक्तं चानीप्सितम्’ इतिसूत्राद्ग्रामं गच्छंस्तृणं स्पृशति, विषं भुङ्क्ते इत्यादौ कर्मसंज्ञा । उभयत्राप्यनुद्देश्यत्वरूपानीप्सितत्वसत्त्वात् ।

संज्ञान्तरैरनाख्यातं तु—

दुह्याच्पच्दण्ड्रुधिप्रच्छिचिब्रूशासुजिमथमुषाम् ।
कर्म युक्स्यादकथितं तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम् ।

इत्यादि षोडशधातूनां कर्मणा युक्तस्यापादानादिविशेषैरविवक्षितस्य कर्मसंज्ञाविधायकाऽकथितं चेत्यनुशासनानुशासितसंज्ञावद्गां दोग्धि पय इत्यादौ गवादिरूपं, तदपि पयःकर्मकं गोसंबन्धि दोहनमिति बोधे । गोसंबन्धि यत्पयस्तत्कर्मकं दोहनमिति बोधे तु षष्ठ्येव । दुहादिषु फलद्वयाभिधानेन गवादीनां कर्मत्वात् ‘कर्तुरीप्सिततमं कर्म’ इत्यनेन कर्मत्वप्रतिपादनमनुचितमेवेति प्रतिपादितं प्राक् । ननु गां दोग्धि पयः स्थाल्यामित्यादौ अधिकरणत्वाविवक्षायां स्थाल्या अप्यनेन कर्मत्वापत्ति-

रिति चेन्न। अन्तरङ्गत्वात्समवायसंबन्धवति चरितार्थो विधिः संयोगसंबन्धवति न प्रवर्तते। तथा युक्तमित्येकवचनादेकस्मिल्लक्ष्ये उ(क्तमु?)भयत्रापादयितुमशक्यम्। अन्यथा देवदत्ताय स्थाल्यां हस्तेन गां दोग्धि पय इत्यादौ सर्वत्र द्वितीयापत्तिः, अधिकरणसंज्ञाकरणसंज्ञयोरपि पूर्वत्वात्। यत्र तु न समवायसंबन्धवदुपस्थितं तत्र संयोगादिसंबन्धग्रहणम्। स्थालीं दोग्धि पय इत्यादौ व्रजमवरुणद्धि गामितिवदिष्टापत्तिः।

वैयाकरणनव्यास्तु—स्वामिनः सत्त्वनिवृत्तिस्वस्वत्वोत्पत्त्युभयानुकूलो व्यापारो दीयतामित्यभिलापादिरूपो दिदापयिषाव्यञ्जको याचेरर्थः। अविनीतं विनयं याचते इत्यत्र तु स्वीकारानुकूलो व्यापारो याचेरर्थः। स्वीकारश्चेदमवश्यं करिष्यामीति अभिला(षा?पा)दिजनको ज्ञानविशेषः। फलतावच्छेदकसंबन्धो विषयता। अत्रापादानादिविषयाभावादनेन कर्मत्वमित्याहुः। तन्न, पुत्रार्थं कन्यां याचते इत्यनापत्तेः, स्वधनं याचते इत्याद्यनापत्तेश्च। उभयत्र यथाक्रमं स्वस्वत्वोत्पत्तिस्वामिस्वत्वनिवृत्त्यभावात्।

यत्तु पौरवं गां याचते इत्यादौ स्वोद्देश्यकदानेच्छा याचेरर्थः। प्रधानकर्मगवाद्यन्वितद्वितीयार्थविषयत्वं धात्वर्थतावच्छेदकदानेऽन्वेति। स्वविषयकज्ञानादिरूपविषयोपहितेच्छाबोधकधातुस्थले इच्छाविषयविषयत्वमेव प्रधानकर्मत्वम्। अत एव घटो जिज्ञास्यते इत्यादौ घटादेः सन्नन्तकर्मतेत्यादि व्युत्पत्तिवादे उक्तम्। तन्न। पुत्रार्थं कन्यां याचते इत्यनापत्तेः स्वसंप्रदानकदानेच्छां प्रति फलालाभशङ्कया देहीत्यवदत्यपि तथाप्रयोगापत्तेश्च।

मम तु प्रतिभाति—बुद्धया निश्चितलाभानुकूलो व्यापारो याचेरर्थः। अनिश्चितस्तु भिक्षतेः। तस्माद्भिक्षतेर्याचतिसमानार्थकत्वं वदन्तो उपेक्ष्याः। अत एव स्वधनं याचत इति प्रयोगो नतु भिक्षते इति। इदं च भाष्येऽपि दुहियाचिभिक्षीति उभयोः पृथग्ग्रहणाद्ध्वनितम्। यदपि याचनमात्रादपायाभावेन बलेर्गां याचते इति नेष्टमिति स्पष्टं भाष्ये इत्युक्तम्। तदपि न। पूर्वपक्षभाष्ये तथोक्तेऽपि तदुत्तरसिद्धान्तभाष्ये कारकं चेद्विजानीयाद्यां यां मन्येत सा भवेदिति पौरवाद्याच्यते कम्बल इति भवत्येवेति वदतो भाष्यकारस्य बलेर्गां याचत इत्यादिप्रयोगस्यापीष्टत्वात्। व्रजमवरुणद्धि गामित्यादौ निर्गमप्रतिबन्धानुकूलो व्यापारो धात्वर्थः।

एवं चैकाश्रयकः गोवृत्तिनिर्गमप्रतिबन्धानुकूलो व्यापारो व्रजसंबन्धीति बोधः । अत्राधिकरणत्वाविवक्षायामनेन कर्मत्वम् ।

गुरुं धर्मं पृच्छतीत्यादौ जिज्ञासाबोधकव्यापारो धात्वर्थः । बोधे गुरुवृत्तित्वस्य जिज्ञासायां धर्मविषयकत्वस्य चान्वयः । तथा च धर्मविषयकजिज्ञासाविषयकगुरुवृत्तिज्ञानानुकूलः देवदत्तकर्तृको व्यापार इति बोधः।

वृक्षमवचिनोति फलानीत्यादौ ग्रहणानुकूलो व्यापारो धात्वर्थः । अन्ये विभागपूर्वकमादानं चेरर्थ इति वदन्ति तन्न, विभागस्यार्थसिद्धत्वाद्वाच्यताकोटौ निवेशे गौरवात् । तथा चैकदेवदत्ताश्रयकः फलवृत्तिग्रहणानुकूलो व्यापारो वृक्षसंबन्धीति बोधः ।

शिष्यं धर्मं ब्रूत इत्यादौ ज्ञानानुकूलः शब्दप्रयोगरूपो व्यापारो धात्वर्थः । एकदेवदत्ताश्रयकः शिष्यसंबन्धी धर्मविषयकज्ञानानुकूलो व्यापार इति बोधः । अन्ये तु प्रतिपत्त्यवच्छिन्नव्यापारो वदिवचिब्रुविउपदिशियाचतीनामर्थः । तन्निष्ठायां प्रतिपत्तौ शिष्यस्याधेयत्वेन धर्मस्य विषयत्वेनान्वयः । धर्मविषयिणी या शिष्यनिष्ठा प्रतिपत्तिस्तदनुकूलो व्यापारो देवदत्तनिष्ठ इति बोधमाहुः ।

[केचित्तु ज्ञानोद्देश्यकशब्दजनककृतावित्यर्थः । शब्दस्य सविषयकत्वाभावात् धर्मविषयककृत्यधीनः शब्द इति बोधमाहुः । कृत्यधीनःशब्दोऽर्थः । ज्ञानेशिष्यवृत्तित्वस्य शब्दे च धर्मविषयकत्वस्यान्वयः । तथा च शिष्यवृत्तिज्ञानोद्देश्य अपरे तु विषयतया ज्ञानानुकूलः शब्दप्रयोगरूपो व्यापार इति वदन्ति ?] । तत्राद्ये क्रियावाचित्वाभावाद्धातुत्वाभावः । द्वितीये गौरवम् । तृतीये शब्दं ब्रूते इत्यादावनन्वयः । तस्मादुच्चारणानुकूलव्यापारोऽर्थः । धर्मपदस्य तत्प्रतिपादकशब्दे लक्षणा । तथा च गुर्वाश्रितः धर्मप्रतिपादकशब्दकर्मकोच्चारणानुकूलो व्यापारः शिष्यसंबन्धीति बोधः । संबन्धस्तूद्देशरूपः । एवं च धर्मोपदेशकाले प्रसङ्गाच्छूद्रेण श्रुतेऽपि शूद्रं धर्मं ब्रूते इति न प्रयोगः ।

शिष्यं धर्ममनुशास्तीत्यादौ प्रवृत्तिपर्यवसायी ब्रूञर्थ एव शासेरर्थः । तथा च गुर्वाश्रितः प्रवृत्तिपर्यवसायी धर्मप्रतिपादकशब्दकर्मकोच्चारणानुकूलो व्यापारः शिष्यसंबन्धीति बोधः ।

अजां ग्रामं नयति भारं वहति हरति कर्षतीत्यादावुत्तरदेशसंयोगानुकूलव्यापारो नयत्यादेरर्थः । तथा च देवदत्ताश्रितः ग्रामसंबन्धी अजा-

वृत्युत्तरदेशसंयोगानुकूलो व्यापार इति बोधः । संयोगस्य द्विष्ठत्वेऽप्यजा ग्रामसंबद्धा भवत्वितीच्छा न तु ग्रामः अजासंबद्धो भवत्वित्युद्देशः । तेनाजायाः कर्तुरिति कर्मत्वं ग्रामस्य त्वकथितं चेत्यनेन ।

अकर्मकधातुभिर्योगे देशभावकालगन्तव्याध्वानां कर्मसंज्ञाविधायकात् 'अकर्मकधातुभिर्योगे देशः कालो भावो गन्तव्योऽध्वा च कर्मसंज्ञक इति वाच्यम्' इति वार्तिकान्मासं जीवति, क्रोशं स्वपिति, गोदोहं तिष्ठति कुरून्क्रीडतीत्यादौ कर्मसंज्ञा । माससंबन्धिप्राणधारणानुकूलव्यापारो देवदत्तकर्तृकः इत्यादि बोधः । अधिकरणत्वविवक्षायां तु सप्तम्येव, समायां विजायत इति यथा । अत्र च [ननु देशपदेन कुरुपञ्चालादिग्रहणात्कथमिदमपि चेन्न । विनिगमकाभावेनोभ (यप ? यार्थे) कत्वसंभवात् ।] समानोदरे शयित इति निर्देशोऽपि लिङ्गम् । एतेन मासं जीवतीत्यादावधिकरणरूपं गौणमेव कर्मत्वं सुपाऽनुभाव्यते । मासाधिकरणकजीवनवानिति बोध इति जयरामाद्युक्तमपास्तम् ।

अभिनीत्येतत्संघातपूर्वकाद्विशतेराधारस्य कर्मसंज्ञाविधायकात् 'अभिनिविशश्च' इत्यनुशासनादभिनिविशते सन्मार्गमित्यादौ कर्मसंज्ञा । सन्मार्गविषयकाग्रहवानिति बोधः । एष्वर्थेष्वभिनिविष्टानामिति भाष्यप्रयोगात्क्वचिन्न । तेन पापेऽभिनिवेश इत्यादिसिद्धिः ।

उप–अनु–अधि-आङ्-पूर्वस्य वसतेराधारस्य कर्मसंज्ञाविधायकात् 'उपान्वध्याङ्वसः' इत्यनुशासनादुपवसति अनुवसति अधिवसति आवसति वा ग्रामं सेनेत्यादावधिकरणत्वं द्वितीयार्थः । तथा च सेनाकर्तृको ग्रामाधिकरणको निवास इति बोधः । अत्र तु लुग्विकरणपरिभाषया वस निवास इत्यस्यैव ग्रहणं, न तु वस आच्छादन इत्यस्य । तेन गृहेऽनुवस्ते इत्यादिसिद्धिः । भोजननिवृत्तिवाचकस्य वसेः प्रतिषेधबोधकात् 'वसेरश्यर्थस्य प्रतिषेधः' इत्यनुशासनाद्वन उपवसतीत्यादौ तु न । 'उपोष्य रजनीमेकाम्' इत्यादौ तु कालाध्वनोरित्यनेन द्वितीया ।

अधिपूर्वकशीङ्स्थासामाधारस्य कर्मसंज्ञाविधायकादधिशीङ्स्थासां कर्मेत्यनुशासनादधितिष्ठति अधिशेते अध्यास्ते वा वैकुण्ठं हरिरित्यादौ कर्मसंज्ञा, तेन हर्याश्रिता वैकुण्ठाधिकरणिका शयनक्रियेति बोधः ।

गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणां धातूनामण्यन्तावस्थायां

१ अर्थशब्दो निवृत्तिवाचीति कैयटः । अश्यर्थस्य वाचको यो वसिस्तस्येत्यर्थः ।

कर्तुर्ण्यन्तावस्थायां कर्मसंज्ञाविधायकात् 'गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्द-कार्माकर्मकाणाम्' इत्यनुशासनात्—

शत्रूनगमयत्स्वर्गं वेदार्थं स्वानवेदयत् ।
आशयच्चामृतं देवान्वेदमध्यापयद्विधिम् ॥
आसयत्सलिले पृथ्वीं यः स मे श्रीहरिर्गतिः ॥

इत्यादावण्यन्तकर्तृभूतानां शत्रु–स्व–देव–विधि-पृथ्वीत्यादीनामनेन कर्मसंज्ञा । तथा च स्वर्गकर्मकं शत्रुनिष्ठं यद्गमनं तदनुकूलो व्यापारो हरिकर्तृक इत्यादिबोधः । अत्र कर्मत्वं द्वितीयार्थः । यत्तु शब्दशक्तिव्युत्पत्तिवादानुरोधेन प्रकृत्यर्थनिरूपितं कर्तृत्वमेव द्वितीयार्थ इत्युक्तं वैयाकरणनव्यैः तन्न, प्रधानणिजर्थकर्मत्व एव द्वितीयाविधानेन गत्यादिसूत्रस्य विध्यर्थत्वे नियमार्थत्वे वा कर्मत्वस्यैव तदर्थत्वात् । अन्तर्भूतगत्यर्थकेऽपीदं प्रवर्तते । तेन तारयति कपीनित्यादि सिद्धम् । न चैवं नाययति वाहयति वा भारं भृत्येनेत्यादावन्तर्भूतगतित्वात्कर्मत्वापत्तिः । नीवह्योर्नेति निषेधात् । इदमेवात्र गौणगत्यर्थग्रहणे लिङ्गम् । देवदत्तकर्तृका भृत्यकर्तृकग्रामभारकर्मकनयनवहनानुकूला क्रियेति बोधः । वाहयति बलीवर्दान्यवानित्यादि तु 'नियन्तृकर्तृकस्य वहेरनिषेधः' इति स्मरणात् । देवदत्तकर्तृका बलीवर्दाश्रितयवकर्मकवहनानुकूला क्रियेति बोधः । अस्मादेव भाष्योदाहरणाद्रूढियोगमपहरतीति न्यायं बाधित्वा पशुप्रेरकसामान्यस्य ग्रहणम् । हिंसायामेव प्रत्यवसानार्थभक्षेः कर्मत्वं, भक्षयति बलीवर्दान् सस्यम्, एककर्तृका बलीवर्दनिष्ठा सस्यकर्मकभक्षणानुकूला क्रियेति बोधः । भक्षयत्यन्नं बटुनेत्यादौ तु बटुकर्तृकान्नकर्मकभक्षणानुकूला क्रिया देवदत्तकर्तृकेति बोधः ।

'जल्पतिप्रभृतीनामुपसंख्यानम्' इत्यनुशासनाज्जल्पयति पुत्रं धर्मं देवदत्त इत्यादौ कर्मसंज्ञा । अत्र पुत्रनिष्ठधर्मकर्मकजल्पनानुकूला क्रिया देवदत्तकर्तृकेति बोधः । अत्र ब्रूञ्समानार्थकत्वाज्जल्पतियोगेऽकथितं चेति कर्मसंज्ञायां यज्ञदत्तः जल्पयति धर्मं पुत्रं देवदत्तमिति प्रयोगोऽपीष्ट एव । देवदत्तनिष्ठपुत्रनिष्ठधर्मकर्मकजल्पनानुकूला क्रिया यज्ञदत्तकर्तृकेति बोधः । दृशेश्चेत्यनुशासनाद्दर्शयति हरिं भक्तानित्यत्र कर्मसंज्ञा, भक्तवृत्तिहरिकर्मकदर्शनानुकूला क्रिया देवदत्तकर्तृकेति बोधः । स्मारयति हरिं भक्तैरित्यत्र स्मरतेर्बुद्ध्यर्थत्वेऽपि न गतिबुद्धीत्यनेन कर्मत्वम् । तत्र

ज्ञानसामान्यार्थस्यैव ग्रहणात् । अत्र दृशेश्चेत्येव लिङ्गम्, अन्यथा दर्शनस्यापि बुद्धिविशेषत्वात्तेनैव सिद्धे किं तेन ।

हृक्रोरणौ कर्तुर्णौ कर्मत्वविधायकात् ' हृक्रोरन्यतरस्याम् ' इत्यनुशासनात् हारयति कारयति भृत्येन भृत्यं वा कटमित्यादौ विकल्पेन कर्मसंज्ञा । भृत्यकर्तृकं तत्कर्मकं वा कटकर्मकं हरणं करणं वा तदनुकूला देवदत्तकर्तृका प्रवर्तनेति बोधः ।

आत्मनेपदिनोरभिपूर्वकवदिदृशोरण्यन्तकर्तुर्ण्यन्ते विकल्पेन कर्मसंज्ञाविधायकेनाभिवादिदृशोरात्मनेपदेवेति वाच्यमित्यनुशासनेनाभिवादयते दर्शयते देवं भक्तेन भक्तं वेत्यादौ भक्तकर्तृकं तत्कर्मकं वा देवकर्मकमभिवन्दनं दर्शनं वा तदनुकूला प्रवर्तना देवदत्तकर्तृकेति बोधः ।

तसन्तोभयसर्वयोर्योगे धिक्–उपर्युपरि–अधोऽधोऽध्यधीत्येतेषां च योगे द्वितीयाविधायकात्—

' उभसर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु ।
द्वितीयाम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते '

इत्यनुशासनादुभयतः कृष्णं गोपा इत्यादौ द्वितीया । कृष्णसंबन्धिपार्श्वद्वयवर्तिनः इति बोधः । धिक् कृष्णाभक्तमित्यादौ कृष्णाभक्तसंबन्धिनिन्देत्यर्थः । उपर्युपरि अधोऽधोऽध्यधि वा लोकं हरिरित्यादौ सामीप्यरूपः संबन्धो द्वितीयार्थः । लोकसमीपोर्ध्वभागवृत्तिर्हरिरिति बोधः । एवं समीपाधोभागवृत्तिः समीपदेशवृत्तिरिति यथाक्रमं बोधः ।

' अभितःपरितःसमयानिकषाहाप्रतियोगेऽपि ' इत्यनुशासनादभितः परितो वा कृष्णं गोपा इत्यादौ द्वितीया । अनयोः खण्डशः शक्त्या सर्वावच्छेदेनेत्यर्थः । तदेकदेशे सर्वस्मिन् द्वितीयार्थसामीप्यसंबन्धान्वयः कृष्णसंबन्धिसर्वावच्छेदेनेत्यर्थः । अभित इति आभिमुख्ये(वा?) कृष्णसंमुख इत्यर्थः । समया ग्रामं निकषा वेत्यत्राव्यये सामीप्यार्थे । द्वितीयार्थो निरूपितत्वं ग्रामनिरूपितसामीप्यवदित्यर्थः । हा कृष्णाभक्तमित्यादौ कृष्णाभक्तसंबन्धी शोक इत्यर्थः । ननु हा पितः क्वासीत्यत्र तथा हा तातेत्यत्रापि पितरि द्वितीयापत्तिरिति चेन्न । पितृसंबोधकप्रश्नविषयसत्ता शोच्येत्यर्थोत्पितरि हाशब्दयोगाभावात् । यद्वा हेत्यस्य मामित्यनेन संबन्धः । ईदृशपितृवियोगादहं शोच्योऽथवा मम कष्टमिति बोधः । पित्रैव हाशब्दयोग इत्याग्रहे तु अन्तरङ्गत्वात्प्रथमा ।

अन्तरान्तरेणाभ्यां योगे द्वितीयाविधायकात् 'अन्तरान्तरेण युक्ते' इत्यनुशासनादन्तरान्तरेण हरिं न सुखमित्यादावत्यन्ताभाववानर्थः । द्वितीयार्थः प्रतियोगित्वमभावेऽन्वेति। तथा हरिपदं हरिभक्तिपरम् । हरिभक्तिप्रतियोगिकाभाववद्वृत्तिसुखसत्ताभाव इति बोधः । तव ममान्तरा कमण्डलुरित्यत्र त्वन्मत्संबन्धी कमण्डलुर्मध्ये इत्यर्थादन्तरायोगाभावात्कमण्डलुना योगेऽपि अन्तरङ्गत्वात्प्रथमा । किमनयोरन्तरेण गतेनेत्यादौ विशेषेण ज्ञातेनेत्यर्थात्तृतीयान्तोऽन्तरेणशब्दो न तु निपातः । प्रकृते तु परस्परसाहचर्यान्निपातस्यैव ग्रहणमिति द्वितीयाभावः ।

कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे कालाध्ववाचकाद् द्वितीयाविधायकात् 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' इत्यनुशासनात् मासमधीते क्रोशं कुटिला नदीत्यादौ द्वितीया । व्यापकतासंबन्धो द्वितीयार्थः । तथा च मासं व्याप्याध्ययनमिति बोधः । अधिकरणत्वविवक्षायां तु मासेऽधीत इत्येव प्रयोगः। अन्तरान्तरेणेत्यनेन साहचर्यात्संबन्धत्वप्रकारक एवैतस्य प्रवृत्तेः। अत एवैकादश्यां न भुञ्जीतेत्यस्य साधुत्वम् । ननु त्रिंशद्दिनेषु कंचित्कालमध्ययनेऽपि मासेन सर्वव्याप्त्यभावे कथं प्रयोग इति चेन्न । यत्समुदायो मासादिपदार्थः त एव तदवयवाः । एवं च प्रत्यहं त्रिंशद्दिनेषु कंचित्कालमध्ययनेऽपि तदवयवव्याप्तिसत्त्वाद् द्वितीयोपपत्तिः । दिनं स्वपितीत्यादिप्रयोगस्तु नैकदण्डादिस्वापे दिनावयवव्याप्त्यभावात् ।

ज्ञानजनकज्ञानविषयत्वरूपलक्षणत्वद्योतकस्यानोः कर्मप्रवचनीयसंज्ञाविधायकात् 'अनुर्लक्षणे' इत्यनुशासनात्कारीरीमनु वृष्टिरित्यत्र कर्मप्रवचनीयसंज्ञायां सन्त्याम् 'कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया' इति द्वितीया । अत्रानोरनुभूयत इत्यत्रेव न क्रियागतविशेषद्योतकत्वम् । षष्ठीवन्न संबन्धबोधकत्वं द्वितीययैवोक्तत्वात् । नापि विलिखतीत्यत्र विमाय लिखतीतिवत् क्रियापदाक्षेपकत्वं किंतु द्वितीयार्थसंबन्धस्य लक्ष्यलक्षणभावरूपविशेषेऽवस्थापनम् । तदुक्तम्—

क्रियाया द्योतको नायं संबन्धस्य न वाचकः ।
नापि क्रियापदाक्षेपी संबन्धस्य तु भेदकः ।। इति ।

संबन्धभेदकत्वाभावेऽपि कचिद्विधानसामर्थ्यात्संज्ञा । अत्र द्वितीयार्थः संबन्धः हेतुश्च । अत्र शब्दशक्तिप्रकाशिकायामनुशब्दस्य क्रियावाचित्वादित्युक्तं, भाट्टरहस्ये च हेतुसमानाधिकरणमनोरर्थ इत्युक्तं, तदु-

भयमप्यसत् । सर्वमते उपसर्गाणामवाचकत्वात् । वृक्षमनु विद्योतते विद्युदित्यत्र वृक्षज्ञानजन्यज्ञानविषयो विद्युद्विद्योत इत्येव बोधाद्धेतुत्वाभावाच्च । एवं च कारीर्यभिन्नहेतुज्ञानजन्यज्ञानविषयो वर्षणमिति बोधः । अनन्तरोक्त ' सहयुक्तेऽप्रधाने ' इति तृतीयानिमित्तसहशब्दार्थसाहित्ये द्योत्येऽनोः कर्मप्रवचनीयसंज्ञाविधायकात् ' तृतीयार्थे ' इत्यनुशासनादनोः कर्मप्रवचनीयसंज्ञायां तद्युक्ते नदीमन्ववसिता सेनेत्यत्र द्वितीया । संबन्धो द्वितीयार्थः । तया सह संब(न्धे?द्धे)त्यर्थः । साहित्यरूपसंबन्धस्य द्विष्ठत्वेऽपि तृतीयावत्प्रतियोगिन्येव द्वितीया । हीनत्वद्योतकानोः कर्मप्रवचनीयसंज्ञाविधायकात् ' हीने ' इत्यनुशासनादनुहरिं सुरा इत्यत्रानोः कर्मप्रवचनीयत्वाद्द्वितीया । तथा च हरिप्रतियोगिकापकर्षवन्त इत्यर्थः ।

अधिके हीने च द्योत्ये उपेत्यस्य कर्मप्रवनीयसंज्ञाविधायकात् ' उपोधिके च ' इत्यनुशासनाद्धीने उप हरिं सुरा इत्यत्रोपशब्दस्य कर्मप्रवचनीयसंज्ञा । बोधः पूर्ववत् । खार्यपेक्षयाधिको द्रोण इत्यर्थे उप खार्यां द्रोण इत्यादौ यस्मादधिकमिति सप्तमी वक्ष्यते । वैयाकरणनव्यैस्तूप सुरान्हरिरित्यादौ सुरप्रतियोगिकाधिकत्ववानिति बोधादधिकेऽपि द्वितीया भवतीत्युक्तम् । तन्न । सप्तम्या बाधादुप सुरेषु हरिरित्यस्यैवेष्टत्वात् ।

लक्षणेत्थंभूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः, इत्यनेन वृक्षं प्रति पर्यनु वा विद्योतते विद्युदित्यादौ प्रत्यादीनां कर्मप्रवचनीयत्वात्कर्मप्रवचनीयुक्ते द्वितीयेति द्वितीया।वृक्षज्ञानजन्यज्ञानविषयो विद्युद्विद्योत इत्यर्थः । भक्तो विष्णुं प्रति पर्यनु वा । अत्र विषयत्वाख्यः संबन्धो द्वितीयार्थः । तस्य पदार्थैकदेशे भक्तावन्वयः । तथा च विष्णुविषयकभक्त्याश्रय इति बोधः । इत्थंभूतः कंचित्प्रकारं प्राप्तः स आख्यायते निरूप्यतेऽनेनेतीत्थंभूताख्यानं प्रकारविशषनिरूपकत्वम् । लक्ष्मीर्हरिं प्रति परि अनु वेत्यत्र स्वत्वाख्यः संबन्धो द्वितीयार्थः । हरिप्रतियोगिकस्वत्ववती लक्ष्मीरिति बोधः । वृक्षं वृक्षं प्रति परि अनु वा सिञ्चतीत्यत्र व्याप्यत्वविशिष्टवृक्षादिकर्मकसेचनक्रियेति बोधः । यदा तु जलनिरूपितसंयोगाश्रयत्वं वृक्षे विवक्षितं, यदा कर्मत्वस्य संबन्धत्वविवक्षा तदाप्यनेन द्वितीया।वृक्षनिष्ठव्याप्यतानिरूपितव्यापकत्ववती सेकक्रियेति बोधः । यदा तु......तदा......जलं वृक्षं वृक्षं प्रति सिञ्चतीति च प्रयोगः । जले कर्तुरिति कर्मत्वं वृक्षे तु कर्मप्रवचनीयत्वात् द्वितीया ।

भागवर्जलक्षणादावभेः कर्मप्रवचनीयसंज्ञाविधायकात् 'अभिरभागे' इत्यनुशासनाद्वृक्षमभि सिञ्चति इत्यादावभेः कर्मप्रवचनीयसंज्ञायां द्वितीया षत्वाभावश्च । बोधः पूर्ववत् । भागे तु यदत्र ममाभि स्यात्तद्दीयताम् । अत्र यच्छब्दो बुद्धिस्थत्वेन भागबोधकः । मत्संबन्धिभागकर्तृका एतदधिकरणिका सत्ता प्रेरणाविषयः(?)तत्कर्मकं दानमिति बोधः ।

अपिः पदार्थसंभावनान्ववसर्गगर्हासमुच्चयेषु इत्यनुशासनादपिः कर्मप्रवचनीयः । सर्पिषोऽपि स्यात् । अपिः स्वद्योत्यबिन्दुदौर्लभ्यस्यापि द्योतकः । तथा च सर्पिरवयवबिन्दुकर्तृका तद्बिन्दुदौर्लभ्यप्रयुक्तदौर्लभ्यवती संभावनाविषयः सत्तेति बोधः । उदकस्या(प्या)चामेदित्यादौ कर्मापेक्षः । तथा चोदकावयवबिन्दुकर्मिका तद्बिन्दुदौर्लभ्यप्रयुक्तदौर्लभ्यवती संभावनाविषयो देवदत्तकर्तृकाचमनक्रियेति बोधः । अपि स्तुयाद्विष्णुमित्यत्र विष्णुकर्मिकैतत्कर्तृका शक्यत्वेन संभाव्यमाना स्तुतिरिति बोधः । धिग् देवदत्तमपि स्तुयाद्वृषलमित्यत्र वृषलकर्मिका गर्ह्या स्तुतिरिति बोधः । स्तुतिगर्ह्यत्वे तत्कर्तुरपि गर्ह्यत्वं फलति । एवंविधद्वितीयार्थनानात्वादाश्रयत्वं द्वितीयार्थ इति भूषणोक्तमपास्तम् । * तिबन्तधातूपस्थाप्यपाकधर्मिककर्मत्वानुभवानुकूलसुप्सजातीयत्वं द्वितीयात्वम् * । [चोरस्य हिनस्तीत्यत्र तिबन्तधात्वर्थे कर्मत्वप्रतिघातिकादौ कर्मत्वाद्यननुभावकत्वेऽपि तदनुभावकसजातीयत्वान्नाव्याप्तिः?] । वस्तुतः * संकेतविशेषसंबन्धेन द्वितीयापदवत्त्वमेव द्वितीयात्वम् * । एवं तृतीयादावपि ।

इति द्वितीया ।

तृतीयार्थनिर्णयः ।

कर्तुरिच्छाविषयप्रधानीभूतधात्वर्थव्यापाराश्रयत्वरूपस्वातन्त्र्याश्रयस्य कर्तृसंज्ञाविधायकेन स्वतन्त्रः कर्तेत्यनुशासनेन रामेण बाणेन हतो वालीत्यादौ रामस्य कर्तृसंज्ञायां सत्यां, तथा कर्तुरिच्छाविषयाव्यवहितफलजनकव्यापाराश्रयत्वरूपसाधकतमत्वस्य करणसंज्ञाविधायकेन 'साधकतमं करणम्' इत्यनुशासनेन बाणस्य करणसंज्ञायां सत्यामुभयत्रापि 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' इत्यनुशासनात्तृतीया । उभयत्राप्याश्रयत्वं तृतीयार्थः । कर्मत्वकर्तृत्वाधिकरणत्वानि विशेषणविशेष्यभाववदनियतानि न तु गोत्वादिवद्वस्तुविशेषनियतानि । अतः इच्छाविषयेति विशेषणम् । रामकर्तृकबाणव्यापारसाध्यप्राणवियोगाश्रयो वालीति बोधः ।

अयं कर्ता त्रिविधः—केवलः, प्रयोजको हेतुः, कर्मकर्ता च। देवदत्तेन हरिः सेव्यत इति शुद्धः। क्रियते हरिणेति प्रयोजको हेतुः। गमयति कृष्णं गोकुलमिति कर्मकर्ता, देवदत्ताभिन्नाश्रयको हरिकर्मकः सेवनानुकूलो व्यापारः। हर्यभिन्नाश्रयक उत्पादनानुकूलो व्यापारः। गोकुलकर्मकगमनानुकूलकृष्णाश्रयतादृशव्यापारानुकूलो व्यापार इति यथाक्रमं बोधः।

ननु विवक्षातः कारकविभक्तयो नाना भवन्तीत्युक्तत्वाद्देवदत्तः काष्ठैः पचतीतिवत्काष्ठानि देवदत्तेन पचन्तीत्यपि स्यादिति चेन्न। अर्था हि कर्ता तत्प्रयुक्तेन पदेन(?)। किं च तस्य प्रतिनिधिः दृश्यते। व्रीह्यभावे नीवारैरिज्यते। कर्तुः स नास्ति। तद्भेदे कर्मान्तरमेवेति प्रसिद्धिः। किंच कारकान्तरानुपादानेऽप्यसौ दृश्यते भवत्यादिष्विति सकलकारकचक्रप्रयोक्तुरेव मुख्यं कर्तृत्वम्। अन्येषां तु विवक्षारूपगौणकर्तृत्वेन देवदत्तप्रयोजकत्वाभावात्। ननु विवक्षावशात्काष्ठादिकरणादीनां कर्तृत्वादिवत्संप्रदानापादानयोरपि कर्तृत्वापत्तिरिति चेन्न। शब्दशक्तिस्वाभाव्यात्तन्निष्ठक्रियायाः प्राधान्यत्वस्यास्वीकारात्। ननु आत्मानमात्मना वेत्सीत्यादावेकस्य कर्तृत्वकर्मत्वकरणत्वानुपपत्तिः। न च विवक्षावशान्निर्वाहः। पर्यायेण तथा वक्तुं शक्यत्वेऽपि आकडारादेका संज्ञा इति नियमादेकस्यैव वस्तुनो युगपदेकक्रियानिरूपितकर्मत्वकरणत्वादेरसंभवादिति चेत्सत्यम्। अत एवाहंकाराद्युपाधिभेदेनात्मनोऽपि भेदं स्वीकृत्य समाहितं भाष्ये।

एतेन ननु एकस्यैव करणत्वकर्मत्वस्वीकारे कर्म करणमिति नानाविधव्यवहारोऽनुपपन्नः। व्यवहर्तव्यभेदस्यैव व्यवहारभेदनियामकत्वादिति चेन्न। उपधेयसंकरेऽपि उपाधेरिति न्यायेन व्यवहर्तव्याभेदेऽपि व्यवहर्तव्यतावच्छेदकभेदादेव घटो द्रव्यं पाचकः पाठक इत्यादाविव व्यवहारभेदस्वीकारात्। विवक्षातः कारकविभक्तयो नाना भवन्तीति शाब्दिका अप्यनुकूला इति तार्किकोक्तमपास्तम्। भवदृष्टान्तेन हि देवदत्तः पाचकः पाठक इतिवदात्मा कर्म करणमिति व्यवहारे सिद्धेऽपि एकस्यात्मनः कर्मकरणत्वासंभवात्। अन्यथा आत्मानमात्मना वेत्सीतिवत्काष्ठानिकाष्ठैः पचन्तीत्यपि स्यादिति सर्वोपप्लवः स्यात्। प्रकृतमनुसरामः।

तार्किकास्तु कारकविभक्तिरूपतृतीयायाः क्रियान्वयि कर्तृत्वं करणत्वं चार्थः। कर्तृत्वं च मुख्यं क्रियानुकूला कृतिरेव। सा च कर्त्राख्यातसमभिव्याहृते चैत्रः पचतीत्यादौ क्रियाविशेष्यतयाख्यातेन प्रत्याय्यते। चैत्रेण

पच्यते शय्यत इत्यादिकर्मभावाख्यातस्थले च क्रियाविशेषणतया तृतीयया प्रत्याय्यते इत्याहुः । तन्मते घटो भवतीत्यादौ घटादीनां कर्तृत्वं न स्यात् । न च तत्र भाक्तं कर्तृत्वं, भाक्तत्वे घटेन भूयते इत्यत्र तृतीया न स्यात्तदुत्पत्तौ संज्ञाया एव नियामकत्वात् । अनेककल्पनापत्तेश्च । विस्तरस्तु अस्मत्कृताख्यातवादे द्रष्टव्यः ।

केचित्तु करणत्वं * कारकान्तरनिष्ठव्यापारद्वारा क्रियाहेतुत्वाभावे सति क्रियाहेतुत्वम् * । सत्यन्तेन कर्तृकर्मणोः करणनिष्ठव्यापारद्वाराऽधिकरणस्य कर्तृकर्मान्यतरनिष्ठव्यापारद्वारा संप्रदानस्य स्वानुमति-(प्रकाशनेने)च्छोत्पादनद्वारा, अपादानस्य पतनप्रतिबन्धकसंयोगनाशकविभागद्वारा च क्रियाहेतुत्वादतिव्याप्तिवारणम् । कुठारेण छिनत्तीति भाक्तं करणत्वमित्युक्तं तन्न मुख्यत्वे संभवति भाक्तत्वे प्रमाणाभावात् ।

अन्ये तु *व्यापारवदसाधारणं कारणं करणम् * । घटं प्रति कपालसंयोगवारणाय व्यापारवदिति, ईश्वरज्ञानवारणायासाधारणेति । असाधारणकारणत्वं च कार्यतानवछिन्नकार्यतानिरूपितकारणताश्रयत्वमिति वदन्ति ।

यत्तु भूषणे उक्तम्—करणतृतीयाया अप्याश्रयो व्यापारश्चार्थ इति । तन्न । काष्ठादिकरणनिष्ठव्यापारस्य स्थाल्याद्यधिकरणनिष्ठव्यापारवद्धात्वर्थत्वावश्यकत्वेन पुनस्तृतीयार्थत्वकल्पनस्यानुचितत्वात् । न च प्रत्ययार्थत्वमेवास्तु मास्तु धात्वर्थत्वमिति वाच्यम् । प्रत्ययार्थत्वे काष्ठानि पचन्तीत्यादौ काष्ठानां धात्वर्थव्यापाराश्रयत्वाभावेन कर्तृत्वानापत्तेः ।

दिवः साधकतमस्य युगपत्कर्मसंज्ञाकरणसंज्ञाविधायकाद् दिवः कर्म चेत्यनुशासनादक्षैरक्षान्वा देविता दीव्यतीत्यादौ द्वितीया तृतीया च । अक्षकरणकदेवनकर्तेति बोधः । नन्वत्र परत्वात्कर्तृकर्मणोः कृतीति षष्ठ्याऽक्षाणां देवितेत्यस्यैवोचितत्वमिति चेन्न । कर्तृसाहचर्येण धात्वर्थाश्रयकर्मण्येव तत्प्रवृत्तेः । न चात्र परत्वात्तृतीयैव स्यादिति वाच्यम् । कार्यकालपक्षे कर्मणि द्वितीयेत्यत्र यदस्योपस्थानं तस्यानवकाशत्वाद्द्वितीयोपपत्तेः ।

प्रकृत्यादिशब्देभ्यः सर्वविभक्त्यर्थे तृतीयाविधायकात् 'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्' इत्यनुशासनात्प्रकृत्या चारुरित्यादौ तृतीया । स्वाश्रयाधिकरणयावत्कालवृत्तिचारुत्ववानिति बोधः । प्रकृतिर्धर्मविशेषः । प्रायेण याज्ञिक इत्यादौ प्रायशब्दस्यावच्छेदकावच्छिन्नत्वराहित्यविशिष्टबाहुल्य-

मर्थः । तृतीयायाः अवच्छिन्नत्वम् । तथा च किंचिन्न्यूनबाहुल्यावच्छिन्नयज्ञविद्यावानिति बोधः । नाम्ना सुतीक्ष्ण इत्यादौ नामज्ञाप्यतीक्ष्णत्ववानिति बोधः । सुरथो नाम राजेत्यत्र नामेति लुप्ततृतीयाकं प्रसिद्धार्थकमव्ययम् । तथा च सुरथ इति प्रसिद्धो राजेत्यर्थः । नाम्ना चन्द्रकलेत्यादौ नामभूतचन्द्रकलाशब्दाभिन्नेत्यर्थः । ननु सर्वत्राक्षिप्तक्रियाकरणत्वात्तृतीयासिद्धौ व्यर्थमि(दमि)ति चेन्न । संबन्धत्वेन विवक्षायां षष्ठीबाधनार्थत्वेन सार्थक्यात् । अस्मिन्पक्षे प्रकृत्यादिभ्यः तृतीयायाः संबन्धोऽर्थः ।

द्वयोर्गुणप्रधानभावेन गुणक्रियाद्रव्यैरन्वयबोधकसहशब्दप्रयोगे कचिदप्रयोगे वाऽप्रधाने तृतीयाविधायकात् 'सहयुक्तेऽप्रधाने' इत्यनुशासनात्पुत्रेण सहागतः पिता, पुत्रेण सह पिता स्थूलः, पुत्रेण सह पितुर्गौरित्यादावार्थान्वयरूपाप्रधानात्तृतीया । तत्प्रयोगं विनाऽपि वृद्धो यूनेत्यादौ बोध्यम् । सहार्थश्च समभिव्याहृतपदार्थसमानकालिकसमानदेशरूपं साहित्यं संबन्धस्तृतीयार्थः । तथा च पुत्रसंबन्ध्यागमनसमानकालिकागमनवान्पितेति बोधः । पुत्रसंबन्धिस्थौल्यसमानकालिकस्थौल्यवान्पिता पुत्रसंबन्धिगोस्वामित्वसमानकालिकगोस्वामित्ववान्पितेति यथाक्रमं बोधः ।

वैयाकरणनव्यास्तु व्युत्पत्तिवादानुसारेण तृतीयार्थश्च क्रियासमभिव्याहारे सहार्थबलात्प्रतीयमानतत्तत्क्रियाकर्तृत्वादिकमेव । तथा च पुत्रकर्तृकागमनसमानकालिकागमनवान्पितेति बोधः । द्रव्यगुणसमभिव्याहारे तत्तत्पदार्थसंबन्ध एव । एवं च पुत्रात्कर्तरि तृतीया सिद्धा । न च क्तेनाभिधानम् । इतरसमभिव्याहारं विनाऽपि प्रतीयमानस्वप्रकृत्यर्थक्रियाकर्तुरेव तेनाभिधानात् । एवं पुत्रेण सहागमनं देवदत्तस्येत्यादौ प्रतीयमानकृत्प्रकृत्यर्थान्वयिनोः कर्तृकर्मणोरेव षष्ठी, न तत्प्रतीयमानतदन्वयिनोरिति न दोषः । तथापि पुत्रेण स्थूल इत्याद्यर्थं सूत्रमित्याहुः । तन्मन्दम् । कर्तृत्वस्य संबन्धत्वेन विवक्षायां क्रियान्वयेऽपि सूत्रस्यावश्यकत्वात् । संबन्धत्वेनाविवक्षायामप्यागत इति क्तप्रत्ययेन कर्तुरुक्तत्वात्तृतीयाऽप्राप्तौ क्रियायोगेऽपि तस्यावश्यकत्वात् । न चेतरसमभिव्याहारं विनेति पूर्वोक्तरीतिः साध्वी, संकोचे मानाभावात् । विनिगमनाविरहेण इतरसमभिव्याहारं विना प्रतीयमानस्वप्रकृत्यर्थक्रियाकर्तुरेव क्तेनाभिधानवत्, इतरसमभिव्याहारं विना प्रतीयमानक्रियाकर्तुरेव तृतीयेति वक्तुं शक्यम् । न च 'प्रासोष्ट शत्रुघ्नमुदारचेष्टमेका सुमित्रा सह लक्ष्मणेन'

इत्यादौ समानकालिकत्वरूपसहार्थत्वाभावात्तृतीयानुपपत्तिरिति वाच्यम् । लक्ष्यानुरोधेन क्वचित् स्थूलकालघटितसमानकालीनत्वस्वीकारात् । नन्वेवं पूर्वमागतोऽयं न पुत्रेण सहेति निषेधानुपपत्तिः । पुत्रगमनाधिकरणस्थूलकालवृत्त्यागमनसंबन्धत्वेन साहित्याभावबाधादिति चेन्न । तत्र क्षणत्वेनैव कालस्य सहशब्दार्थेऽन्तर्भावनीयत्वात् । एवं यत्रैककालेऽपि विभिन्नस्थले भुञ्जानमधिकृत्य न पुत्रेण सह भुङ्क्ते इति प्रयोगः, तत्रैकशालारूपभोजनाधारोऽपि सहशब्दार्थान्तर्भूतः । किंचोक्तरीत्या पिता गतः पुत्रो ऽपीत्यादौ पुत्रे तृतीयापत्तिः । पितुरागमनं पुत्रस्यापीत्यादौ षष्ठ्यनापत्तिः । अनेकक्लिष्टकल्पनायां फलाभावश्च । न च भाष्यानुरोधात्तथा कल्प्यते । भाष्यस्य पित्रा सह पुत्रेणौदनः पच्यते इत्येवंपरत्वात् ।

यदप्यप्रधानप्रत्याख्यानपरभाष्यमुपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसीति यत्र कारकशब्दस्यान्तरङ्गपरतया व्याख्यानं हरदत्तादीनामन्तरङ्गमपि बाधित्वापवादत्वात्तृतीया स्यादित्यनेन दूषयाञ्चक्रुर्नव्याः तदपि न, अपवादो हि यद्यन्यत्र चरितार्थस्तर्ह्यन्तरङ्गेण बाध्यते । अन्यथा तातङ् सर्वादेशो न स्यात् । क्रियान्वयित्वरूपकारकत्वमादाय शास्त्रव्यवहारादर्शनाच्च ।

'सहैव दशभिः पुत्रैर्भारं वहति गर्दभी' इत्यादौ 'पुत्रसंबन्धिभारवहनसमानकालिकगर्दभीकर्तृकभारवहनम्' इति बोधात्साहित्यबोधक एव सहशब्दः । केचित्तु विद्यमानतावाचिसहशब्दमाश्रित्य दशपुत्राणां विद्यमानत्वेऽपीति बोधमाहुः । तन्न । पुत्रेण सहेत्यत्रापि तथापत्तेः । विवरणे सप्तम्यर्थस्याशाब्दत्वापत्तेश्च ।

विकृतेनाङ्गेन यत्राङ्गिनो विकारो लक्ष्यते तत्र विकृताङ्गवाचकात्तृतीयाविधायकात् 'येनाङ्गविकारः' इत्यनुशासनादक्ष्णा काण इत्यादौ तृतीया । अक्षिसंबन्धिनाशवान्सचक्षुष्क इति बोधः । अक्षि काणमस्येत्यादौ तु अङ्गविकारो न त्वङ्गिविकार इति तृतीयाभावः ।

कंचित्प्रकारं प्राप्तस्य लक्ष्यस्य लक्षणवाचकात्तृतीयाविधायकात् 'इत्थंभूतलक्षणे' इत्यनुशासनाज्जटाभिस्तापस इत्यादौ तृतीया । लक्ष्यलक्षणभावः संबन्धस्तृतीयार्थः । जटाज्ञाप्यतापसत्वविशिष्ट इति बोधः ।

संपूर्वस्य जानातेः कर्मणि तृतीयाविधायकात्संज्ञोऽन्यतरस्यां कर्मणी-

त्यनुशासनात्पित्रा पितरं वा संजानीत इत्यादौ पाक्षिकी तृतीया। कर्मत्वं तृतीयार्थः। तथा च पितृकर्मकं ज्ञानमिति बोधः।

द्रव्यगुणक्रियासाधारणकारणरूपहेतौ निर्व्यापारकारणरूपे कालरूपे च हेतौ तृतीयाविधायकाद्धेतावित्यनुशासनाद्दण्डेन घटः पुण्येन दृष्टो हरिः अध्ययनेन वसतीत्यादौ तृतीया। दण्डहेतुको घटः, पुण्यहेतुकं हरिदर्शनम्, अध्ययनहेतुको वास इति यथाक्रमं बोधः।

इति तृतीया।

चतुर्थ्यर्थनिर्णयः।

कर्त्रा धात्वर्थक्रियाजन्यफलाश्रयेण संबद्धुमिष्यमाणस्य कारकस्य संप्रदानसंज्ञाविधायकात् 'कर्मणा यमभिप्रैति स संप्रदानम्' इत्यनुशासनाद्विप्राय गां ददातीत्यादौ विप्रादीनां संप्रदानसंज्ञायां सत्याम् 'संप्रदाने चतुर्थी' इति चतुर्थी।

संप्रदानत्वं च–धात्वर्थक्रियाजन्यफलाश्रयसंबन्धित्वेन कर्त्रभिप्रेतत्वम् *। अखण्डोपाधिर्वा* संकेतविशेषसंबन्धेन तत्पदवत्त्वं वा*।

धात्वर्थश्चान्योद्देशेन त्यागानुकूलो व्यापारः। एवं च विप्रोद्देश्यकः गोनिष्ठत्यागानुकूलो व्यापारो देवदत्तकर्तृक इति बोधः। एवं वृक्षायोदकं सिञ्चति, शत्रवेऽस्त्रं मुञ्चति, मित्राय दूतं प्रेषयतीत्यादौ वृक्षोद्देश्यकोदकनिष्ठक्रियानुकूला देवदत्तनिष्ठा क्रियेत्यादिबोधः। [यदि तु दाधातुयोगे एवानेन संप्रदानत्वमित्याग्रहः, तदा युद्धाय संनह्यत इतिवत् 'तुमर्थाच्च भाववचनात्' इत्यनेन चतुर्थी।?]

यत्तु शब्देन्दुशेखरे दाधात्वर्थश्च स्वत्वस्वस्वत्वानिवृत्त्युभयानुकूलो व्यापारः। तदेकदेशे स्वत्वे चतुर्थ्यर्थस्योद्देश्यस्य निरूपकतयान्वयः। एवं च विप्राभिन्नेच्छाविषयनिरूपितस्वत्वस्वस्वत्वानिवृत्त्युभयानुकूला क्रिया देवदत्तकर्तृकेति बोधः इत्युक्तं वैयाकरणनव्यैः। परस्वत्वे हेतुश्च त्याग एव वा। अत एव विदेशस्थं पात्रमुद्दिश्य त्यक्तधने स्वीकारमन्तरेणैव पात्रमरणे पिण्डोद्देश्यपुत्रादिभिरेव तद्धनं गृह्यते नान्यैरिति व्यवहार इत्याद्युक्तम्। तन्न। अन्योद्देश्यकत्वविशिष्टत्यागस्य गुरुत्वेन प्रतिग्रहीतृनिष्ठप्रतिग्रहादेरेव तत्र स्वत्वजनकत्वात्। त्यागस्यैव स्वत्वजनकत्वे तु देवदत्तकर्तृकत्यागोत्तरं स्वत्वोत्पत्त्या प्रतिग्रहाभावेऽपि तत्पुत्रैर्ग्राह्यतापत्तिः।

न चेष्टापत्तिः अरण्यस्थदण्डादेरिव कस्यापि स्वत्वाभावेन सर्वेषां विनियुज्यत्वमिति सिद्धान्तभङ्गापत्तिः । भवद्भिरपि स्वत्वं च दानादिनाश्यं प्रतिग्रहादिजन्यमतिरिक्तपदार्थरूपमिति वदद्भिः प्रतिग्रहादेरेव स्वत्वजनकत्वस्योक्तत्वेन पूर्वापरविरोधस्य स्पष्टत्वाच्च ।

तत्संप्रदानं त्रिविधम्—अनिराकरणप्रेरणानुमतिभेदात् । यथाक्रमं देवतायाचकोपाध्यायरूपाणि । ननु यदग्नये च प्रजापतये च सायं जुहोति, सर्वैर्भूतैरुत्सृष्टजलमूर्जित(?)मित्यादाविव पशुना रुद्रं यजते इत्यादावपि त्यागविशेषरूपक्रियाया रुद्रादेरनिराकर्तृसंप्रदानतया चतुर्थी स्यादिति चेन्न । 'कर्मणः करणसंज्ञा संप्रदानस्य च कर्मसंज्ञा' इति वार्तिकेन कर्मत्वार्थकतृतीयया संप्रदानार्थकद्वितीयया च पशुं रुद्राय ददातीत्यर्थेऽपि तस्य साधुत्वबोधनात् । एतेन गौरवितप्रीतिहेतुक्रिया यज्यर्थः । तदर्थतावच्छेदकं फलं प्रीतिः । तदाश्रयतया रुद्रस्य विवक्षितत्वात्कर्मसंज्ञैव ननु चतुर्थी त्यागात्मकतादृशक्रियायां निरुक्तानिराकर्तृसंप्रदानत्वे सत्यपि तदविवक्षणात् । प्रीतिभागितयोद्देश्यत्वरूपसंप्रदानत्वविवक्षायां च रुद्राय यजनमित्यपि प्रयोग इत्यादि तार्किकोक्तमपास्तम् । पशुकरणकरुद्रवृत्तिप्रीतिजनकक्रियेति बोधे तस्य साधुत्वोपपत्तावपि रुद्रोद्देश्यकं पशुकर्मकं दानमिति बोधे साधुत्वं न स्यात् । अनुशासनेनार्थविशेषपुरस्कारेण साधुत्वबोधनात् । अन्यथा गोण्यां व्युत्पादितस्य गोणीशब्दस्य गव्यपि साधुतापत्तेः । तस्मात्संप्रदानत्वविवक्षायां रुद्राय यजनमित्यस्य साधुत्वाभिधानमयुक्तमेव ।

यत्तु ननु कर्मग्रहणं किमर्थं यमभिप्रैतीत्येतावताप्युद्देश्यत्वलाभात् । 'क्रियाग्रहणं च कर्तव्यम्' इति वार्तिकं च न कार्यमित्यपरं च लाघवमिति चेन्न । दानक्रियाभिप्रेतगवा उपाध्याय अभिप्रेयत इति अन्तरङ्गत्वम् । गोरप्युद्देश्यतयान्तरङ्गत्वात्तस्यैव संज्ञा मा भूदित्येतदर्थं तत्सत्वात् । न च कर्मसंज्ञाऽनवकाशा, सामर्थ्यात्पर्यायापत्तेरित्यूचुर्वैयाकरणनव्याः । तन्न । पत्ये शेते इत्यकर्मकस्थले संप्रदानसंज्ञायाः सावकाशत्वेन निरवकाशया कर्मसंज्ञया बाधेन पर्यायाभावात् । यद्वा कर्मसंज्ञायाः क्रियाजन्यधात्वर्थफलाश्रयस्यैवेप्सिततमत्वात्तस्यैव कर्मसंज्ञायां तत्संबन्धितयोपस्थितस्य संप्रदानसंज्ञेति व्यवस्थोपपत्तिः । तस्मात्कर्मग्रहणं कर्मणश्चतुर्थीनिमित्तत्वप्रदर्शनेन कर्मश्रुत्यपेक्षया चतुर्थीश्रुतेर्बल-

त्त्वबोधनार्थम् । तेन विक्रीते सोमे मैत्रावरुणाय दण्डं प्रयच्छतीति दण्डप्रदानं न प्रतिपत्तिः । किं तु द्वितीयापेक्षया बलीयस्या चतुर्थीश्रुत्या मैत्रावरुणसंस्कारकमिति मीमांसकोद्घोषः संगच्छते ।

धात्वर्थक्रियानवच्छेदकधात्वर्थक्रियाजन्यफलभागित्वेनोद्देश्यः संप्रदानमित्यर्थकात् ' क्रियया यमभिप्रैति स संप्रदानम् ' इति वार्तिकात् 'पत्ये शेते' इत्यादौ संप्रदानत्वे संप्रदाने चतुर्थीति पतिसंप्रदानकं पत्नीकर्तृकं शयनमिति बोधः । भाष्यमतेऽध्याहृतारम्भणक्रियाकर्मत्वं शयनस्येति वार्तिकप्रत्याख्यानात्कर्मणा यमभिप्रैति स संप्रदानमित्यनेनैव संप्रदानत्वम् । एवं च संप्रदानस्य चरितार्थत्वात्सामर्थ्यात्पर्यायापत्तिरिति पूर्वोक्तमपास्तम् । तथा च पतिसंप्रदानकपत्नीकर्तृकशयनकर्मकं पत्नीकर्तृकमारम्भणमिति बोधः । तथा च हरिः—

संदर्शनं प्रार्थनायां व्यवसाये त्वनन्तरा ।
व्यवसायस्तथाऽऽरम्भे साधनत्वाय कल्पते ॥
पूर्वस्मिन्या क्रिया सैव परस्मिन्साधनं मता ।

अस्यार्थः—

संदर्शनं फलविषयः संकल्पः । तत्प्रार्थनायां फलोपायविषयेऽभिलाषे साधनं व्यवसायः क्रियाविशेषस्य फलसाधनत्वेन निश्चयः । तत्रानन्तरा प्रार्थना साधनम्, अभिलाषे सति निश्चयकरणात् । व्यवसायश्चारम्भे मानस्यां प्रवृत्तौ साधनं तेनाप्यमानत्वेन शयनस्य प्रकृतक्रियाकर्मत्वं, पिण्डीमित्यादौ आक्षिप्तक्रियाकर्मत्ववत् । क्रियार्थोपपदस्येति सूत्रस्वरसाच्च । कटं करोतीत्यादौ तु संदर्शनादयो धात्वर्थाद्भेदेन विवक्ष्यन्ते इति न दोषः ।

रुच्यर्थानां धातूनां योगे रुचिविषयीभूतद्रव्यजन्यप्रीतिमानर्थोऽपि संप्रदानमित्यर्थकात् 'रुच्यर्थानां प्रीयमाणः' इत्यनुशासनात्, हरये रोचते भक्तिरित्यादौ संप्रदानसंज्ञा । समवायसंबन्धेन हर्याश्रिता भक्तिविषया प्रीतिस्तदनुकूलो भक्तिनिष्ठो व्यापार इति बोधः । षष्ठ्यपवादत्वादाश्रितत्वरूपः संबन्धः चतुर्थ्यर्थः । विषयतारूपफलतावच्छेदकसंबन्धेन प्रीतिसमानाधिकरणो व्यापारो रुचेरर्थः । तथा चाकर्मकोऽयम् । एवं च 'प्रीञ् तर्पणे ' इति क्र्यादेश्चुरादेर्वाभिलषतेश्चयोगे न, तयोः सकर्मकत्वेन रुच्यर्थत्वाभावात् । तथा च भक्तिः हरिं प्रीणयति । हरिः भक्तिं अभिलषतीत्यादयः प्रयोगाः । अत एवान्यकर्तृकोऽभिलाषो रुचि-

रिति वृद्धाः । तस्यार्थः—अभिलष्यतिकर्ता हरिः तदपेक्षयाऽन्यः भक्तिरूपस्तत्कर्तृकोऽभिलाषो प्रीत्यनुकूलव्यापारो रुचिरित्यर्थः । विषयकर्तृकोऽभिलाष इति फलितोऽर्थः । आदित्यो रोचते इत्यत्र न प्रीतिवचनम् । प्रीयमाण इति विशेषणाद्व्याख्यानाद्वा दीप्त्यर्थस्याग्रहणात् । यत्तु नारदाय रोचते कलह इति नारदादेर्न संप्रदानता किं तु रुच्यर्थानामिति सूत्रेण संबन्धमात्रे चतुर्थीति जयरामभवानन्दप्रभृतितार्किकैरुक्तं तत्तु सूत्रार्थाज्ञानात् । नह्यनेन चतुर्थी विधीयते, अपि तु संप्रदानसंज्ञेति दिक् ।

श्लाघह्नुङ्स्थाशपां धातूनां योगे बोधयितुमिष्टस्य संप्रदानसंज्ञाविधायकात् 'श्लाघह्नुङ्स्थाशपां ज्ञीप्स्यमानः' इत्यनुशासनाद्देवदत्ताय श्लाघते ह्नुते तिष्ठते शपते वेत्यत्र संप्रदानसंज्ञायां संप्रदाने चतुर्थीति चतुर्थी । तत्र ज्ञीप्स्यमानपदेन यस्मै आख्यायते स ज्ञीप्स्यमानः । अथवा यः आख्यायते स ज्ञीप्स्यमान इति व्याख्याभेदः । तत्राद्ये, शेषत्वात्षष्ठ्यां प्राप्तायां ....

.... तथा चात्मगुणबलप्रतिपादनकर्तृकं परकर्मकं वा(?)देवदत्तसंबन्धिश्लाध्यत्वकथनमिति बोधः । तथा च भट्टिः—श्लाघमानः परस्त्रीभ्यस्तत्रागाद्राक्षसाधिप इति । आत्मानं परस्त्रीभ्यः श्लाध्यं कथयन्नित्यर्थः । गोपी स्मरात् कृष्णाय श्लाघते इत्यत्र गोपीकर्तृका स्मरहेतुका कृष्णवृत्तिबोधविषया स्तुतिरिति बोधः । द्वितीये कृष्णं स्तौतीत्यर्थः । एवं ह्नुतिविशिष्टं कृष्णं, स्थित्या शपथेन च कृष्णं बोधयतीति सर्वत्र बोधः ।

णिजन्तधृङवस्थान इति धातोर्योगे तदर्थावस्थित्याश्रयसंबन्धि संप्रदानमित्यर्थकेन 'धारेरुत्तमर्णः' इत्यनुशासनेन भक्ताय धारयति मोक्षं हरिरित्यादौ संप्रदानत्वे चतुर्थी । संबन्धोऽत्र विभक्त्यर्थः । हरिकर्तृको भक्तसंप्रदानको मोक्षकर्मकोऽवस्थित्यनुकूलो व्यापार इति बोधः । यदा तु भक्तस्य मोक्षेऽन्वयस्तदा भक्तस्येति षष्ठ्येव । एवं देवदत्तस्य शतं धारयतीत्यपि साध्वेव ।

इच्छानुकूलमनःसंयोगरूपव्यापारवाचक–'स्पृह ईप्सायाम्' इति चौरादिकयोगे 'स्पृहेरीप्सितः' इत्यनुशासनेनातिशयेच्छाविषयस्य तत्त्वेनाविवक्षायां संप्रदानसंज्ञाविधानात्पुष्पेभ्यः स्पृहयतीत्यत्र चतुर्थी । षष्ठ्यां

प्राप्तायां वचनम्। एकाश्रिता पुष्पसंबन्धीच्छानुकूला क्रियेति बोधः। यदा त्वीप्सिततमत्वेन विवक्षा तदा पुष्पाणि स्पृहयतीति द्वितीयैव। यदा त्वीप्सितस्येप्सिततमस्य वा शेषत्वविवक्षा तदा षष्ठ्येव। अत एव परस्परेण स्पृहणीयशोभमिति कर्मण्यनीयर्, 'कुमार्य इव कान्तस्य त्रस्यन्ति स्पृहयन्ति च' इत्यादयः प्रयोगाः।

मञ्जूषायां तु स्पृहयतिरिच्छामात्रवाची इच्छानुकूलमनःसंयोगादिव्यापारवाची च। फलावच्छिन्नेच्छावाची च वा। आद्ये स्पृहेरीप्सित इति संप्रदानत्वम्। तत्र हीप्सितत्वं धात्वर्थव्यापारजन्यफलाश्रयत्वम्। न तु धात्वर्थत्वाग्रहः फलस्य। कर्मसंज्ञा तु धात्वर्थफलाश्रयस्येत्युक्तम्। शेषे षष्ठ्यपवाद एतत्संप्रदानविभक्तिः। पुष्पसंप्रदानिकेच्छेति बोधः। अन्त्ये कर्मत्वं पुष्पाणि स्पृहयतीति। संप्रदानस्यापि तत्त्वेनाविवक्षायां षष्ठ्येवेत्युक्तम्। तत्र सकलग्रन्थसंमतमदुक्तरीत्यैव प्रयोगनिर्वाहे सर्वधातूनां फलावछिन्नव्यापारवाचित्वस्य प्रसिद्धत्वेन तद्विहाय प्रबलप्रमाणाभावे स्वातन्त्र्येण यत्किंचिदर्थकल्पनस्यानुचितत्वात्।

यदपि शब्देन्दुशेखरे—'यत्तु ईप्सितमात्रे इयं संज्ञा प्रकर्षविवक्षायां तु परत्वात्कर्मत्वम्। एवं चेप्सितमात्रे ईप्सिततमे वा शेषत्वेन विवक्षिते षष्ठ्येव। तत्र शेषत्वेन विवक्षितत्वातिरिक्तस्येप्सितत्वमात्रस्य दुर्वचत्वात् प्रकृतधात्वर्थप्रधानीभूतव्यापारजन्यफलाश्रयत्वस्यैवात्र सत्वेन वारयतिवैलक्षण्यात्, इत्युक्तं, तदप्यसमञ्जसम्। तथाहि पुष्पेभ्यः स्पृहयतीत्यादौ पुष्पवृत्तीच्छानुकूलैकदेवदत्ताश्रयिकात्ममनःसंयोगरूपक्रियेत्यर्थविवक्षायां संप्रदानत्वम्। यदा त्वन्त्येच्छानुकूलेति विवक्षा तदा षष्ठी। एवमेव तण्डुलं पचतीत्यादौ कर्मादीनामविवक्षा, तथा च तत्र फलतावच्छेदकसंबन्धस्य वृत्तित्वादेरेव विशेषरूपस्य सामान्यरूपेण विवक्षायां षष्ठी तण्डुलस्य पचतीति। एवं च स्पृहेरीप्सित इत्यनेन फलतावच्छेदकसंबन्धेनेप्सितस्य संप्रदानत्वं न तु तस्यैव रूपान्तरेण सामान्येन संबन्धत्वेनेत्यर्थः। एवं च शेषत्वेन विवक्षातिरिक्तस्येप्सितत्वमात्रस्य दुर्वचत्वादित्यपास्तम्। प्रकृतेत्यादिग्रन्थस्तु प्रकृतेऽनुपयोग इत्युक्त इति दिक्(?)।

विषयतया क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थधातूनां योगे तन्मूलभूतकोपसंबन्धिनः संप्रदानसंज्ञाविधायकात् 'क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः' इत्यनुशासनात् हरये क्रुध्यतीर्ष्यत्यसूयतीत्यादौ संप्रदानत्वे चतुर्थी। तत्राद्ययोर-

कर्मकत्वात्षष्ठ्यां प्राप्तायामितरयोः कर्मसंज्ञायां च वचनम् । ननु कुप क्रोधे इत्यनुशासनात्कोपस्यैव क्रोधपदार्थत्वात्कथं क्रोधस्य कोपमूलत्वमिति चेत् । वाक्चक्षुरादिविकारानुमेयप्ररूढकोपस्यैवात्र क्रोधपदार्थत्वात् । दुःखजनकक्रियारूपापकारजनकश्चित्तविकारो द्रुहेः । एवं च योऽस्मान्द्वेष्टीत्यादौ त्वनभिनन्दनं द्विषेरर्थः । तच्च बलवद्दुःखसाधनताज्ञानजन्योऽप्रीतिजनकश्चित्तवृत्तिविशेषः । एतेन क्रोधो द्वेष इति शब्दशक्तिकायां यदुक्तं तदपास्तम् । अत एव चित्तदोषार्थानामिति नोक्तम् । यदा त्वेषां न कोपमूलत्वं तदा देवदत्तस्य क्रुध्यति द्रुह्यति देवदत्तमीर्ष्यत्यसूयतीत्यपि साध्वेव । कुप्यति कस्मैचिदित्यत्र क्रियया यमभिप्रैतीत्यनेन संप्रदानत्वम् । हरिसंबन्धी क्रोधः । तत्संबन्ध्यपकारजनकेच्छेति बोधः । हरिकर्मकोत्कर्षविषयो द्वेषः । तन्निष्ठगुणविषये दोषाविष्करणमिति च बोधः।

प्रश्नविषयशुभाशुभपर्यालोचनार्थराधीक्ष्योर्योगे प्रश्नविषयसंबन्धी संप्रदानमित्यर्थकेन 'राधीक्ष्योर्यस्य विप्रश्नः' इत्यनेनानुशासनेन संप्रदानसंज्ञाविधानात्कृष्णाय राध्यतीक्षते चेत्यत्र चतुर्थी । संबन्धश्च चतुर्थ्यर्थः । कृष्णसंबन्धिप्रश्नविषयशुभाशुभपर्यालोचनानुकूला क्रियेति बोधः । शुभाशुभकर्मणो धात्वर्थेनोपसंग्रहादकर्मकावेतौ । अत एव च राधोऽकर्मकादिति गणसूत्रम् ।

प्रवर्तनापूर्वकाभ्युपगमार्थकप्रत्याङ्पूर्वकशृणोतेर्योगे पूर्वप्रवर्तनाश्रयस्य संप्रदानसंज्ञाविधायकात् 'प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः पूर्वस्य कर्ता' इत्यनुशासनाद्विप्राय गां प्रतिशृणोत्याशृणोतीत्यत्र चतुर्थी । विप्रस्य कर्तृप्रयोजकत्वेन हेतुत्वात्कर्तृत्वाद्वा तृतीयाप्राप्तौ वचनम् । चतुर्थ्यर्थः आश्रयत्वं, प्रवर्तनायाश्च जन्यतासंबन्धेनाश्रयेऽन्वयः(?) । तथा च विप्रनिष्ठप्रवर्तनाजन्यो देवदत्तनिष्ठोऽभ्युपगम इति बोधः । यत्तु विवक्षान्तरे देवदत्तो गां प्रतिश्रावयतीति भवत्येवेति हरदत्तः, तच्चिन्त्यम् । देवदत्तो रोचयति मोदकमित्यपि प्रयोगापत्तेः । नचेष्टापत्तिः । रुच्यर्थानामिति सूत्रे हेतुसंज्ञापवादिकेयमिति स्वग्रन्थेन हेलाराजग्रन्थेन च विरोधात् । तस्माद्धेतुसंज्ञायाः बाधादत्र न णिजुत्पत्तिरिति भावः ।

शंसितृप्रोत्साहनार्थकानुप्रतिपूर्वकगृणातेर्योगे पूर्वशंसनरूपव्यापाराश्रयस्य 'अनुप्रतिगृणश्च' इत्यनुशासनेन संप्रदानसंज्ञाविधानाद्धोत्रेऽनुगृणाति प्रतिगृणातीत्यत्र चतुर्थी । शंसितुः प्रोत्साहने कर्मतयाऽन्वयः ।

होतुश्च शंसितरि अभेदान्वयः । तथा च होत्रभिन्नशंसितृकर्मकहर्षानुकूलो व्यापारः अध्वर्युकर्तृक इति बोधः ।

नियतकालं वेतनकरणकस्वीकाररूपे परिक्रयणे साधकतमस्य पाक्षिकसंप्रदानसंज्ञाविधायकेन 'परिक्रयणे संप्रदानमन्यतरस्याम्' इत्यनुशासनेन शतेन शताय वा परिक्रीत इत्यत्र संप्रदानत्वम् । तथा च शतनिष्ठदानरूपव्यापारसाध्यदेवदत्तकर्तृकस्वीकारकर्मीभूत इति बोधः ।

क्रियाफलकक्रियोपपदकाप्रयुज्यमानतुमुनः कर्मणि चतुर्थीविधायकेन 'क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः' इत्यनुशासनेन फलेभ्यो यातीत्यादौ चतुर्थी । फलकर्मकाहरणफलकं यानमिति बोधः । प्रविश पिण्डीमित्यादौ भक्षणार्थप्रवेशनक्रियोपपदत्वेऽपि पिण्ड्यास्तुमुन्नन्तकर्मत्वाभावान्न चतुर्थी । यदा तु भोक्तुमिति तुमुन्नन्ताध्याहारस्तदा चतुर्थी भवत्येव । ननु मशकेभ्यो धूम इत्यत्रेवात्रापि स्वकर्मकाहरणनिष्ठजन्यतानिरूपितजनकतासंबन्धेन फलस्य यानेऽन्वयसंभवात्तादर्थ्यचतुर्थ्यैवोपपत्तौ किं सूत्रेणेति चेत् । फलनिष्ठप्रकारतानिरूपिताहरणनिष्ठविशेष्यतासमानाधिकरणप्रकारतानिरूपितविशेष्यताशालि यानमिति बोधे तस्यावश्यकत्वात् । कर्मत्वार्थिकेयम् ।

भाववचनाश्चेति सूत्रविहिततुमुन्समानार्थककृदन्तप्रातिपदिकात्प्रथमार्थे चतुर्थीविधायकेन 'तुमर्थाच्च भाववचनात्' इत्यनुशासनेन यागाय यातीत्यादौ चतुर्थी । न च तादर्थ्य इत्यनेन गतार्थता । तुमर्थवत्त्वेत्र तादर्थ्यस्योक्तत्वेनोक्तार्थानामप्रयोग इत्यप्राप्तौ विधानसार्थक्यात् । यष्टुं यातीति बोधः ।

उपकार्योपकारकादिरूपतादर्थ्यविवक्षायां षष्ठ्यपवादोपकार्यादिवाचकाच्चतुर्थीविधायकेन तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्येति वार्तिकेन यूपाय दारु ब्राह्मणाय दधीत्यादौ चतुर्थी । तस्मा उपकार्यायेदं तदर्थं तस्य भावः । ब्राह्मणादित्वात्ष्यञ् । उपकार्योपकारकत्वरूपसंबन्धः ष्यञर्थः । कृत्तद्धितसमासेभ्यः संबन्धाभिधानं भावप्रत्ययेनेति सिद्धान्तात् । यूपनिष्ठजन्यतानिरूपितजनकताश्रयं दार्विति बोधः । ब्राह्मणकर्तृकभोजनोपकारकं दधीति बोधः । एवं मशकेभ्यो धूम इत्यादावपि मशकनिवृत्त्युपकारको धूम इति बोधः ।

यत्तु व्युत्पत्तिवादे—यूपाय दार्वित्यादौ न संप्रदानचतुर्थी । अपि

तु तादर्थ्ये इतिसूत्रेण सा। तादर्थ्यं स एवार्थः प्रयोजनमस्य तत्त्वम्। समभिव्याहृतपदार्थतादर्थ्यविवक्षायां तद्वाचकाच्चतुर्थीति तदर्थः। प्रयोजनं चात्र न जन्यत्वम्। दुःखादेः पापादिजन्यतया दुःखाय पापमित्यापत्तेः। नापि जन्यतयेच्छाविषयत्वम्। स्वर्गादेः पुण्यादिजन्यत्वेनेच्छाविषयत्वात्स्वर्गाय पुण्यमित्यापत्तेः। न चेष्टापत्तिः। तथासति पक्तुं व्रजतीत्यर्थे पाकाय व्रजतीति निर्वाहाय तुमर्थेति सूत्रप्रणयनवैयर्थ्यात्। पाकादेर्निरुक्तव्रजनाद्यर्थतयैव तद्वाचकाच्चतुर्थ्युपपत्तेः। अपि तु समभिव्याहृतपदार्थनिष्ठव्यापारेच्छानुकूलेच्छाविषयत्वं तत्प्रयोजनत्वम्। तत्प्रयोजनकत्वरूपतादर्थ्यं च तदिच्छाधीनेच्छाविषयव्यापाराश्रयत्वम्। दारुणो यूपेच्छाधीनेच्छाविषयतक्षणादिरूपव्यापारवत्तया यूपार्थत्वमिति तद्विवक्षया यूपपदाच्चतुर्थी। इच्छाधीनेच्छाविषयव्यापाराश्रयत्वं चतुर्थ्यर्थः। प्रथमेच्छायां यूपादेः प्रकृत्यर्थस्य विषयतयाऽन्वयः। एवं रन्धनाय स्थालीत्यादावूह्यम्। तादृशव्यापारस्तण्डुलधारणादिः। पुण्यादेः स्वर्गेच्छाधीनेच्छाविषयव्यापारानाश्रयतया न स्वर्गाय पुण्यमित्यादयः प्रयोगाः। व्रजनादेः पाकानुकूलव्यापारानाश्रयतया न पाकाय व्रजतीत्यादावनेन चतुर्थीति तुमर्थाच्चेति सूत्रमिति—गदाधरभट्टाचार्यैरुक्तं तद्व्याकरणाज्ञानमूलकम्। तथाहि आदौ वार्तिके सूत्रत्वभ्रमः। दुःखाय पापं, स्वर्गाय पुण्यमित्यादिप्रयोगाणां सूत्रवार्तिकभाष्यसंमतानामसाधुत्वभ्रमः। तथा क्रियार्थक्रियोपपदविहिततुमर्थघञैव तादर्थ्यस्योक्तत्वेन तादर्थ्ये चतुर्थ्यप्राप्तौ तुमर्थाच्चेति सूत्रस्य सार्थक्ये स्पष्टेऽपि तद्व्यर्थताभ्रमः। चैत्राश्रिततक्षणादिरूपव्यापारजन्यफलाश्रयस्य दारुणो व्यापाराश्रयत्वभ्रमः। यदि फलेऽपि व्यापारपदवाच्यत्वं तर्हि यूपाय दारु तक्षति चैत्र इत्यादाविव स्वर्गाय पुण्यं करोति चैत्र इत्यादावपि फलरूपव्यापाराश्रयस्य सर्वसंमतत्वात्साधुत्वापत्त्या भवदुक्तमसाधुत्वं न स्यात्। किं च भवन्मतेऽध्ययनाय वसतीत्यादीनामसाधुतापत्तेः। वसनादेरध्ययनानुकूलव्यापारानाश्रयतया भवदुक्ततादर्थ्याभावेन चतुर्थ्यप्राप्तेः। अध्ययनं कर्तुं वसतीत्यर्थे क्रियार्थोपपदेति चतुर्थीति चेत्तर्हि यागाय यातीत्यत्रापि यागं कर्तुं यातीत्यर्थे चतुर्थ्युपपत्तौ सूत्रवैयर्थ्यं तदवस्थमेवेति दिक्।

नौकाकान्नशुकशृगालभिन्ने तिरस्कारस्य स्पष्टं व्यञ्जके दैवादिकस्य मन्यतेः कर्मणि तिरस्कारे विभाषाचतुर्थीविधायकेन 'मन्यकर्मण्यनादरे

विभाषाऽप्राणिषु' इत्यनेन, न त्वां तृणं तृणाय वा मन्य इत्यादौ पाक्षिकी चतुर्थी । अत्रोत्कृष्टस्यापकृष्टेनाप्युपमानाभावरूपः तिरस्कारः । एवं च त्वद्विशेष्यकतृणसदृशप्रकारकमद्वृत्तिज्ञानाभाव इति बोधः । तृणाय मत्वा रघुनन्दनोऽपीत्यादावपकृष्टेनोपमारूपतिरस्कारः । तृणमिव मत्वेत्यर्थः ।

गन्त्राऽसंप्राप्ते चेष्टारूपगत्यर्थकर्मणि द्वितीयापवादद्वितीयाचतुर्थीविधायकेन "गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि" इत्यनेनानुशासनेन ग्रामं ग्रामाय वा यातीत्यादौ द्वितीयाचतुर्थ्यौ । स्त्रियं गच्छतीत्यत्र न, असंप्राप्तत्वविवक्षायां त्विष्टापत्तिः । नयतेरगत्यर्थत्वादजां नयतीत्यत्रापि न । ननु कर्मणि द्वितीयाविधानं व्यर्थं मन्यकर्मण्यनादरे इत्यस्यानन्तरं गत्यर्थकर्मणीति पठित्वा चतुर्थीविकल्पविधानेनापि पक्षे द्वितीयासिद्धेः । न च ग्रामं गन्तेत्यादौ कृद्योगषष्ठीबाधनार्थं तदिति वाच्यम् । सूत्रप्रत्याख्यानपरेण भाष्येण तत्र षष्ठ्या एव साधुत्वबोधनात् । तथाहि—अध्याहृतसंदर्शनादिक्रियाभिगम्यमानत्वात्कर्मणा गमनेनाभिप्रेयमाणस्य संप्रदानत्वाच्चतुर्थी । यदा तु अनध्याहारस्तदा गमनस्याकर्मत्वात् ग्रामस्य कर्मद्वितीया भवति । एवं हि वदता कृद्योगे षष्ठ्येवेष्यते । अत एव ग्रामं गमीति अकेनोरितिसूत्रे भाष्ये उक्तम् । एवं च भाष्यमते ग्रामोद्देश्यकोत्तरदेशसंयोगानुकूलव्यापारविषयकं संदर्शनादीति बोधः । सूत्रमते तु ग्रामकर्मकं यानमिति बोधः ।

उत्पत्तिरूपक्लृप्त्यर्थवाचकधातुयोगे कार्यकारणयोर्भेदविवक्षायां कारणस्य कार्यात्मना परिणामविवक्षायां कार्यवाचकात्षष्ठ्यपवादचतुर्थीविधायकेन 'क्लृपिसंपद्यमाने च' इत्यनेन भक्तिर्ज्ञानाय कल्पते संपद्यते जायते वेत्यत्र चतुर्थी । भक्तिकर्तृका ज्ञानसंबन्धिन्युत्पत्तिरिति बोधः । अभेदे तु प्रथमैव भक्तिर्ज्ञानमिति । हेतुत्वेन विवक्षायां तु जनिकर्तुरित्यपादानत्वात्पञ्चमी । भक्तेर्ज्ञानमिति । न च तादर्थ्यचतुर्थ्या गतार्थं परिणामत्वेन बोधस्य विवक्षितत्वात् । भक्तिर्ज्ञानात्मना परिणमत इत्यत्र त्वात्मशब्दस्तद्वृत्तिधर्मपरः । ज्ञानत्वविशिष्टरूपान्तरप्राप्तिर्भक्तिकर्तृकेत्यर्थः । एवं च विकारवाचकाभावान्न चतुर्थी ।

यत्तु शब्देन्दुशेखरे प्रथमापवादोऽत्र क्लृपिसंपद्यमाने चेत्यनेन विकारवाचकाच्चतुर्थी विकारे च प्रकृतिरूपारोपः भक्तिरूपज्ञानकर्तृकोत्पत्तिरित्यर्थः । प्रकृतिविकृत्योर्भेदविवक्षायां तु प्रकृतिविकृतिभावाप्रतीतेर्जनि-

कर्तुरित्यपादानत्वेन भक्तिपदात्पञ्चमी । भक्तेर्ज्ञानं कल्पते इति ज्ञानस्य कर्तृत्वेन कारकविभक्तेर्बलवत्त्वेन च ततः प्रथमेति कैयटे स्पष्टमित्याद्युक्तम् । तत्परस्परविरोधादसङ्गतमिति सुधीभिरूह्यम् ।

प्राणिनां शुभाशुभसूचकभूतविकाररूपोत्पातज्ञाप्येऽर्थे वर्तमानात्तत्संबन्धबोधकषष्ठ्यपवादचतुर्थीविधायक–' उत्पातेन ज्ञापिते च ' इत्यनुशासनेन वाताय कपिला विद्युदित्यादौ चतुर्थी । वातज्ञापिका कपिला विद्युदिति बोधः ।

इष्टसाधनरूपार्थहितशब्दयोगे 'तस्मै हितम्' 'चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुख–' इत्यादिज्ञापकसिद्धेन ' हितयोगे– ' इत्यनुशासनेन ब्राह्मणाय हितमित्यादौ षष्ठ्यपवादभूता चतुर्थी । विप्रसंबन्धीष्टसाधनमिति बोधः । एवं सुखयोगेऽपि ब्राह्मणाय सुखमित्यादौ ।

' नमःस्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च ' इत्यनेन षष्ठ्यपवादचतुर्थीविधानाद्धरये नम इत्यादौ चतुर्थी । हर्यवधिकस्वनिकृष्टत्वबोधनानुकूलो व्यापार इति बोधः ।

एषोऽर्घ्यः शिवाय नम इत्यादौ त्यागो नमःशब्दार्थः । शिवोद्देश्यकत्यागविषयोऽर्घ्य इति बोधः । प्रजाभ्यः स्वस्तीत्यादौ स्वस्तिशब्दो मङ्गलार्थः । प्रजासंबन्धि मङ्गलमिति बोधः । स्वस्त्यस्तु गोभ्य इत्यादौ ' चतुर्थी चाशिषि' इति परामपि पाक्षिकषष्ठीं बाधित्वा पुनर्विधानार्थकचकाराच्चतुर्थ्येव । आशंसाविषयगोसंबन्धिमङ्गलकर्तृकं भवनमिति बोधः । अग्नये स्वाहा स्वधा वषट् इत्यादावग्न्युद्देश्यकस्त्याग इति बोधः। स्वाहादीनां त्यागार्थकत्वात् । अलमितिपर्याप्त्यर्थग्रहणं न भूषणार्थस्य, व्याख्यानात् । तेन दैत्येभ्यो हरिरलं प्रभुः समर्थः शक्त इत्यादि । दैत्यमारणादिसंबन्धिसामर्थ्यवान् इति बोधः । ' स एषां ग्रामणीः ' इत्यादिनिर्देशात्प्रभ्वादियोगे षष्ठ्यपि साधुः । ननु नमस्करोतिदेवानितिवदुपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसीत्यनेन नमस्करोति देवेभ्यः, रावणाय नमस्कुर्यादिति भट्टिप्रयोगेऽपि द्वितीया स्यादिति चेन्न, देवान्प्रसादयितुमित्यर्थविवक्षायां क्रियार्थोपपदस्येत्यादिना चतुर्थी । कर्मणः शेषत्वविवक्षायामनेन चतुर्थी । यत्तु मञ्जूषायामुद्देश्यस्य संबन्धत्वेन विवक्षायां षष्ठ्यपीत्युक्तं, तदसत् , नमःस्वस्तीत्यस्य षष्ठ्यपवादत्वात् ॥

इति चतुर्थी ।

पञ्चम्यर्थनिर्णयः ।

स्वाभाविकबुद्धिकल्पितान्यतरसंयोगपूर्वकविभागाश्रयत्वे सति तद्विभागजनकतत्क्रियानाश्रयत्वरूपस्य तत्क्रियायां ध्रुवस्य ' ध्रुवमपायेऽपादानम् ' इत्यनुशासनेनापादानसंज्ञाविधानाद्वृक्षात्पर्णं पतति, धावतोऽश्वात्पतति कुड्यात्पततोऽश्वात्पततीत्यादौ पर्णाश्वकुड्याश्वादीनां निरुक्तध्रुवत्वसत्त्वादपादानत्वे सति पञ्चमी । वृक्षापादानिका पर्णकर्तृकाधोदेशसंयोगानुकूला क्रियेति बोधः । एवं च वृक्षस्थे एव पर्णे भूमिसंलग्नेऽधोदेशसंयोगानुकूलक्रियासत्त्वेऽपि विभागानाश्रयत्वान्न वृक्षस्यापादानत्वम् । धावनकर्त्रभिन्नाश्वापादानिका देवदत्तकर्तृका पतनक्रियेति बोधः । अत्राश्वस्य धावनक्रियाश्रयत्वेऽपि विभागजनकतया तत्क्रियानाश्रयत्वादपादानत्वम् । कुड्यापादानकपातकर्त्रभिन्नाश्वापादानिका देवदत्तकर्तृका पातक्रियेति बोधः । अत्राश्रयभेदात्क्रियाभेदं परिकल्प्याश्वस्य पातक्रियाश्रयत्वेऽपि देवदत्तकर्तृकपातक्रियानाश्रयत्वादश्वस्यापादानत्वम् । परस्परस्मान्मेषावपसरतः इत्यत्रान्यतरमेषापादानिकान्यतरमेषकर्तृकापसरणक्रियेति बोधः । एवं वृक्षात्स्पन्दते राज्याच्चलित इत्यादीनामपि साधुत्वम् । स्पन्दतेरविभागार्थत्वे तु वृक्षे स्पन्दत इति प्रयोगः । वृक्षं त्यजतीत्यादौ तु कर्मसंज्ञया बाधान्नापादानत्वम् ।

अपादानत्वं चाखण्डोपाधिः, ध्रुवेत्यादिविहितसंज्ञावत्त्वं वा ।

नैयायिकास्तु—

अपादानत्वं स्वनिष्ठभेदप्रतियोगितावच्छेदकीभूतक्रियाजन्यविभागाश्रयत्वम् ।

एवं च वृक्षनिष्ठभेदप्रतियोगितावच्छेदकतन्निष्ठविभागजनकपतनाश्रयं पर्णमित्यन्वयधीः । वृक्षवृत्तिविभागजनकवृक्षवृत्त्यन्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकपतनाश्रयः पर्णमित्यन्वयधीर्वा । अत्र विभागो भेदश्च पञ्चम्यर्थः । तत्र धात्वर्थतावच्छेदकत्वेन विभागो विशेष्यः । तेन वृक्षं त्यजति खग इत्यादौ वृक्षस्य नापादानत्वमिति वदन्ति । तन्मते वृक्षाद्विभजत इत्यादौ बोधा(वृ? नुपप)त्तिप्रसङ्गः । वृक्षं त्यजतीत्यस्य परया कर्मसंज्ञया बाधादेवोपपत्तौ तदर्थं विभागे धात्वर्थतानवच्छेदकत्वरूपविशेषणवैयर्थ्यं च ।

तच्च त्रिविधं–निर्दिष्टविषयमुपात्तविषयमपेक्षितक्रियं चेति ।

साक्षाद्धातुना गतिनिर्देशे आद्यम् । यथाऽश्वात्पततीति । यत्र धात्वन्तरा (र्थाङ्ग? र्थगतिविशिष्टं) स्वार्थं धातुराह तदुपात्तविषयम् । यथा—बलाहकाद्विद्योतते विद्युत् (विस्फूरसङ्गे ? निःसरणपूर्वके) विद्योतने द्युतिर्वर्तते । अपेक्षितक्रियं तु तत् यत्र प्रत्यक्षसिद्धमागमनं मनसि निधाय पृच्छति कुतो भवानिति पाटलिपुत्रादिति चोत्तरयति ।

जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानमित्यनुशासनेनैतदर्थकानां धातूनां कारकस्य जुगुप्स्यमानार्थकस्यापादानसंज्ञाविधानादधर्माज्जुगुप्सते विरमति प्रमाद्यति चेत्यत्र पञ्चमी । अत्र पञ्चम्या द्वेषोऽर्थः । तत्र प्रकृत्यर्थस्य विषयत्वेन तस्य निवृत्तिरूपधात्वर्थे जन्यत्वेनान्वयः । तथा च पापगोचरद्वेषजन्यनिवृत्तिमानिति बोधः । विषयत्वं पञ्चम्यर्थः । अधर्मविषयकनिवृत्तिमानिति च । गर्हापूर्वकनिवृत्तिर्गुपधातोरर्थः । विषयत्वं सुपोऽर्थः । तच्च गर्हानिवृत्त्योः क्रमेणान्वितम् । तथा च पापविषयकगर्हाप्रयुक्तपापगोचरनिवृत्तिमानिति बोधः । अनिष्टसाधनतारूपनिन्दा वा जुगुप्सतेरर्थः । विषयत्वं सुपोऽर्थः । तथा च पापविषयकानिष्टसाधनतारूपा निन्देत्यर्थः । विषयता पञ्चम्यर्थः । करणानन्तरमकरणं विरामार्थः । आख्यातार्थे आश्रयत्वं, पञ्चम्यर्थस्य कृतिद्वारकोऽन्वयः । तथा चाधर्मविषयककृत्यनन्तरकालीनाधर्मविषयककृत्यभावाश्रयः । अनवधानं प्रमादार्थः अधर्मविषयकानवधानाश्रयः । एवं यथासंभवं बोधं वदन्ति । भाष्यरीत्या तु अधर्मापादानिका निन्दापूर्विका निवृत्तिः । एवं सर्वत्र । भाष्यमते अपादानस्य संबन्धत्वेन विवक्षायां नात्र षष्ठी अनभिधानात् ।

अनिष्टचिन्तनानिष्टपरिहाररूपभीत्रार्थकधातुयोगेऽनिष्टहेतोरपादानसंज्ञाविधायकानुशासनेन ' भीत्रार्थानां भयहेतुः ' इत्यनेन चोरादीनामपादानत्वाच्चोराद्बिभेति त्रायते वेत्यत्र पञ्चमी । चोरापादानकमनिष्टचिन्तनं तत्परिहारो वेति बोधः । अन्ये तु हेतुत्वं जन्यत्वं वा पञ्चम्यर्थः । तच्च भावित्वेन स्वानिष्टचिन्तनपर्यवसितस्य भयस्यैकदेशेऽनिष्टे चिन्तने वान्वितं, तथा च व्याघ्रहेतुकस्वानिष्टस्य भावित्वेन चिन्तनवान्, व्याघ्रहेतुकत्वेन भाव्यनिष्टधर्मिकचिन्तनवानिति वदन्ति । चोरहेतुकभयाभावानु-

कूलव्यापाराश्रय इति वा बोधः । भाष्यरीत्या तु वृद्धिप्राप्तचोरापादानिका तद्भयपूर्विका निवृत्तिः । तदपादानिकानिष्टपरिहारफलिका निवर्तनेति वा बोधः । एतद्विषये हेतुत्वापादानत्वाविवक्षायां षष्ठी भवत्येवेति बोध्यमिति वैयाकरणनव्याः । तत्कौस्तुभादिसकलग्रन्थविरुद्धम् । तथा हि 'कस्य बिभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे' इत्यत्र कथं षष्ठीत्याशङ्क्य संयुगेन विशेषणात्षष्ठीति समाहितम् । तस्माद्धेतुत्वेनाविवक्षायामपि वस्तुगत्या यो हेतुस्तस्यानेनापादानसंज्ञाविधानाद्धेतुतृतीयाषष्ठ्योरपवादिका पञ्चमी । अन्यथा हेतुत्वापादानत्वयोरविवक्षयैव सिद्धौ तदनुधावनं व्यर्थं स्यात् । यदपि पापस्य जुगुप्सत इत्युक्तं शब्देन्दुशेखरे तदप्यसमञ्जसमेव फलभेदे प्रत्याख्यानासंभवात् । वार्तिकरीत्या तत्र षष्ठ्यभावे निर्णीते भाष्यमतेऽप्यनभिधानस्यैव शरणीकरणीयत्वात् । फलभेदाभावेन भाष्योपपत्तावन्यथाव्याख्यानस्यानुचितत्वात् । सर्वैरपि ग्रन्थकारैस्तथा व्याख्यातत्वाच्च ।

यत्तु भवानन्दैरुक्तं पञ्चम्या हेतुत्वमर्थः । धातोर्यथायथं भयं भयाभावश्चार्थः । पञ्चम्यर्थः हेतुत्वं धात्वर्थे भये धात्वर्थतावच्छेदके चाभये ऽन्वेति आख्यातार्थाश्रयत्वं परित्राणानुकूलव्यापारश्च । इत्थं च हेतुपञ्चम्यैवोपपत्तौ पृथक्सूत्रप्रणयनं तस्यैव प्रपञ्चार्थमिति । तथा च व्याघ्रहेतुकभयाश्रयः शत्रुहेतुकभयाभावानुकूलव्यापारवानिति चाऽन्वयधीरिति । तन्न । हेतुपञ्चमीविधायकानुशासनाभावात् । विभाषा गुणेऽस्त्रियामिति गुणे सत्त्वेऽपि चोररूपे द्रव्ये तदभावात्, विभाषेति योगविभागस्यागतिकगतित्वात्, गुणातिरिक्तहेतोः पञ्चम्यनुशासनविरहादिति जनिकर्तुरिति सूत्रस्थस्वोत्तरग्रन्थविरोधाच्च ।

परापूर्वस्य जयतेः प्रयोगेऽसह्यार्थस्यापादानसंज्ञाविधायकेन 'पराजेरसोढः' इत्यनुशासनेनाध्ययनात्पराजयते इत्यादावपादानसंज्ञाविधानात्पञ्चमी । अध्ययनसंबन्धिनी ग्लानिरित्यर्थः । भाष्यरीत्या तु अध्ययनापादानिका निवृत्तिरित्यर्थः । केचित्तु कृत्यसाध्यत्वधीसमानाधिकरणस्तद्विषयकोत्साहाभावो धातोरर्थः । विषयोऽत्रापादानम् अध्ययनापादानको देवदत्तकर्तृकः उत्साहाभाव इति बोधः । तत्पूर्विका निवृत्तिरिति वा । शत्रून्पराजयत इत्यत्र तिरस्कारानुकूलो व्यापारो धात्वर्थः । रणात्पराजयत इत्यत्र युद्धनिवृत्तिर्धात्वर्थः । पञ्चम्या द्वेषोऽर्थः । तेन रणगोचरद्वेषजन्यनिवृत्तिमानिति बोध इति वदन्ति ।

प्रवृत्तिक्रियाप्रतिषेधानुकूलव्यापाररूपवारणार्थकधातुयोगे तत्तत्क्रिया-जन्यफलभागितया तत्तत्क्रियाकर्तुरीप्सितोऽभिप्रेतोऽपादानमित्यर्थकात् ' वारणार्थानामीप्सितः ' इत्यनुशासनाद्यवेभ्यो गां वारयतीत्यत्र यवानामपादानत्वात्पञ्चमी । तथा च यवप्रतियोगिकविनाशानुकूलो भक्षणादिरूपो व्यापारस्तस्य गोवृत्तिर्योऽभावस्तदनुकूलो व्यापारो देवदत्तवृत्तिरिति बोधः । एवं पुष्पेभ्यः आतपं वारयति, परस्वेभ्यः पाणिं वारयति इत्यादौ पुष्पवृत्तिशुष्कीभावानुकूलव्याराभावो यः आतपनिष्ठस्तदनुकूलेत्यादि बोधः । परस्ववृत्तिसंयोगानुकूलव्यापाराभावो यः पाणिनिष्ठस्तदनुकूलेत्यादि प्राग्वत् । कूपादन्धं वारयतीत्यत्र कूपवृत्ति यदधःप्रदेशावच्छिन्नसंयोगानुकूलक्रियारूपं पतनं तदनुकूलो योऽन्धवृत्तिव्यापारस्तस्य योऽभावस्तदनुकूलो व्यापारश्चैत्रवृत्तिरिति बोधः । एवमग्नेर्माणवकं वारयतीत्यत्राग्निजन्यदाहानुकूलव्यापाराभावानुकूलेत्यादि प्राग्वत् । इत्यननुगत एव पञ्चम्यर्थो वारयत्यर्थश्च, अनुभवानुरोधेनाननुगतस्यादोषत्वात् । इति वदन्ति । अन्ये तु सर्वत्र संयोगजनकव्यापाराभावस्य कर्मकारकवृत्तेरनुकूलो व्यापारः स एव धात्वर्थः । वृत्तित्वं पञ्चम्यर्थः इत्यादि यदूचुस्तन्न—यवेभ्यो गोसंयोगं वारयतीत्यनुपपत्तेः ।

यत्तु व्युत्पत्तिवादे यत्र चैत्रादेर्नान्तरीयकतया विषभोजनं प्रसक्तं न तु स्वेच्छातस्तत्र तद्भोजनविरोधिव्यापारकर्तरि चैत्रं विषाद्वारयतीत्यादिर्न प्रयोगः, अपि तु सविषाद्वारयतीत्यादिरेव । तत्र पूर्वप्रयोगवारणाय सूत्रकृतेप्सित इत्यत्र सन्प्रत्ययेनेच्छोपादानादित्याद्युक्तं तत्तु कूपादन्धं वारयति इत्यत्रापि तुल्यम् । तथाहि यथात्र नान्तरीयकं विषभक्षणं तथा तत्र कूपपतनमपि नान्तरीयकमेव । एवं च तत्रापि सकूपादेशाद्वारयतीत्येव प्रयोगः स्यात् । नतु कूपादन्धं वारयतीति । यदि स प्रयोगः प्रामाणिकस्तर्ह्यत्रापि चैत्रं विषाद्वारयतीत्येव प्रयोगः । विषस्य विषत्वेनेच्छाविषयात्वाभावेऽपि भक्ष्यत्वेनेच्छाविषयत्ववत्कूपस्य कूपत्वेनेच्छाविषयत्वाभावेऽपि देशत्वेनेच्छाविषयत्वस्य तुल्यत्वात् । सूत्रवार्तिकभाष्यानुक्ततर्कस्यानुचितत्वात् । ननु पुष्पेभ्य आतपं वारयतीत्यादावातपस्याचेतनत्वात्कथं पुष्पमीप्सितमिति चेत् । निवार्यनिवारकान्यतरस्येप्सितमित्यर्थात् । तथा च धात्वर्थतावच्छेदकीभूतस्य विनाशाद्यनुकूलव्यापाराभावरूपस्य यत्फलं विनाशादि तत्संब-

न्धित्वेन प्रसक्तस्य यवादेस्तद्विपरीतत्वेन निवारकेच्छाविषयत्वात् न कश्चिद्दोषः ।

व्यवधाने सति यत्कर्तृकात्मकर्मकदर्शनाभावमिच्छति तत्कारकमपादानमित्यर्थकेन 'अन्तर्धौ येनादर्शनमिच्छति' इत्यनुशासनेनापादानसंज्ञाविधानान्मातुर्निलीयते कृष्ण इत्यादावपादानत्वात्पञ्चमी । मात्रपादानककृष्णकर्तृकदर्शनाभावानुकूलो व्यापार इति बोधः । अन्ये तु अत्र प्रत्यक्षाभावेच्छापूर्वकप्रत्यक्षविरोधिव्यापारो धात्वर्थः । वृत्तित्वं पञ्चम्यर्थः धात्वर्थतावच्छेदकप्रत्यक्षेऽन्वेति । विरोधित्वं तज्जनकलौकिकसन्निकर्षाभावानुकूलत्वम् । कृतिराख्यातार्थः । तथा च मातृवृत्तिस्वविषयकप्रत्यक्षाभावेच्छापूर्वकः प्रत्यक्षजनकलौकिकसन्निकर्षाभावानुकूलव्यापारस्तदनुकूला कृतिः कृष्णनिष्ठेति बोधमाहुः ।

नियमपूर्वकविद्यास्वीकारे वक्ताऽपादानसंज्ञ इत्यर्थकेन 'आख्यातोपयोगे' इत्यनुशासनेन पण्डितात्पुराणं शृणोति उपाध्यायादधीत इत्यादावपादानत्वात्पञ्चमी । पण्डितापादानकं पुराणकर्मकं श्रवणं चैत्रवृत्तीत्याद्यूह्यम् ।

जायमानस्य हेतुर्निमित्तोपादानसाधारणोऽपादानमित्यर्थकेन 'जनिकर्तुः प्रकृतिः' इत्यनुशासनेन ब्रह्मणः प्रजाः प्रजायन्ते इत्यत्रापादानसंज्ञाविधानात्पञ्चमी । भाष्यमते तु हेतुशब्देनोपादानमेव गृह्यते । उभयथाऽपि ब्रह्मापादानिका प्रजाकर्तृकोत्पत्तिरिति बोधः । आद्ये 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते' इत्यादौ सामान्यशब्देऽपि अहमेव बहु स्यामिति सामानाधिकरण्येन, 'छागो वा मन्त्रवर्णात्' इतिवत् उपादानरूपो विशेषो बोध्यः । अर्थग्रहणाद्धात्वन्तरयोगेऽपि 'अङ्गादङ्गात्संभवसि' इति यथा ।

भूकर्तुः प्रभवः आद्यबहिःसंयोगः (यत्र ?)सोऽपादानमित्यर्थकेन 'भुवः प्रभवः' इत्यनेन हिमवतो गङ्गा प्रभवतीत्यादावपादानत्वात्पञ्चमी । हिमालयसंयोगध्वंसाव्यवहितोत्तरक्षणवृत्त्याद्यपृथिवीसंयोगाश्रयतावती गङ्गेति बोधः । वैकुण्ठात्काशीतो वा गङ्गा प्रभवतीति प्रयोगवारणायाव्यवहितेति आद्येति च । वैकुण्ठसंयोगध्वंसाव्यवहितोत्तरक्षणे भूसंबन्धस्य काशीसंयोगध्वंसाव्यवहितक्षणे चाद्यस्य तस्याभावात् । 'वल्मीकाग्रात्प्रभवति धनुःखण्डमाखण्डलस्य' इत्यादौ वल्मीकाग्रोर्ध्वदेशो बहिःपदार्थः । वल्मीकः सात(यो भेदः ?पो मेघः) ।

केचित्तु—धातोः प्रकाशोऽर्थः, पञ्चम्या अधिकरणं, तथा च हिमवति प्रथमप्रकाश इत्यर्थः । भाष्ये तु बुद्धिपरिकल्पितमपायमाश्रित्य भीत्रार्थानामित्यादिसूत्राणि प्रत्याख्यातानि । तन्मते सर्वत्रावधिः पञ्चम्यर्थः ।

यत्तु दण्डाद्घटः इत्यत्र हेताविति सूत्रेण पञ्चमीति भवानन्दैरुक्तं तन्न । हेताविति सूत्रेण पञ्चम्यविधानात् । प्रकृते पञ्चमी तु जनिकर्तुः प्रकृतिरिति सूत्रेण विभाषेति योगविभागेन वा । विशिष्यार्थानुक्तौ संबन्धः सर्वत्रार्थः ।

अध्याहारादिना गम्यमानल्यबन्तार्थस्य कर्मणि अधिकरणे वा पञ्चमीविधायकेन 'ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च' इत्यनेन प्रासादात्प्रेक्षते आसनात्प्रेक्षते इत्यादौ पञ्चमी । प्रासादमारुह्यासने उपविश्येत्यर्थः । एवं स्थिते ल्यपि कर्माधिकरणं वा पञ्चम्यर्थः ।

यतश्चाध्वकालनिर्माणं तत्र पञ्चमी तद्युक्तादध्वनः प्रथमासप्तम्यौ, कालात्सप्तमी च वक्तव्या' इत्यनुशासनेन वनाद्ग्रामो योजने योजनं वा, कार्तिक्या आग्रहायणी मासे इत्यादौ विभक्तिः । अत्रावधित्वं पञ्चम्यर्थः । वनावधिकयोजनपरिमितदेशवृत्तिर्ग्रामः इति बोधः । प्रथमार्थोऽप्यधिकरणमेवेति केचित् ।

अन्ये तु अव्यवहितोत्तरत्वं पञ्चम्यर्थः । स्वाव्यवहितोत्तरवृत्तित्वं प्रथमासप्तम्योरर्थः । एवं च वनाव्यवहितोत्तरयोजनाव्यवहितोत्तरदेशवृत्तिर्ग्राम इति बोधमाहुः । वस्तुतस्तु वनसंबन्धियोजनसंबन्धी ग्राम इति बोधः । एवं च षष्ठ्यपवादभूतेयम् । अन्ये तु योजनमित्यस्य प्रथमान्तत्वे गतं चेदिति शेषः, ततः प्रभृति गते मासे आग्रहायणीति च बोधमाहुः ।

अन्यार्थक आरादितर ऋते दिक्शब्द अञ्चूत्तरपद आच् आहि इत्येतेषां योगे पञ्चमीविधायकेन 'अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते' इत्यनुशासनेनान्यो भिन्नः इतरो विलक्षणः अर्थान्तरं वेत्यादौ पञ्चमी । अस्याः षष्ठ्यपवादत्वात्प्रतियोगित्वं पञ्चम्यर्थः । कृष्णप्रतियोगिताकभेदवानिति बोधः । नन्वत्रान्यार्थग्रहणे इतरग्रहणं व्यर्थमिति चेन्न । विशेषणीभूतभेदार्थकयोगेऽपि विधानार्थं तदावश्यकत्वात् । अन्यथान्यार्थस्य भेदवदर्थकत्वेन भेदार्थकयोगे न स्यात् । तथा च घटाद्भेदः वैलक्षण्यमर्थान्तरत्वं वा पटस्येति प्रयोगो न स्यात् । इतरग्रहणं प्रपञ्चार्थ-

मिति वदतोऽप्ययमेवाशयः । नन्वेवं घटान्न घटादेक इति च स्यादिति चेन्न । नञो द्योतकत्वेन भेदार्थकत्वाभावात् । घटादेक इत्यादौ त्वेक-शब्दस्यान्यार्थकत्वेनेष्टापत्तेः

यत्तु व्युत्पत्तिवादे अन्येतरयोः स्वरूपपरत्वमेव, अर्थपरत्वे घटादेकः घटात्स इति च स्यादिति । घटाद्भिन्नः घटाद्भिद्यते इत्यादावपादाने पञ्चमी । भिद्धातोर्नान्योन्याभावोऽर्थः । घटाद्भिनत्ति पट इति प्रयोगापत्तेः भिद्यते इति प्रयोगानापत्तेश्च कर्तरि यगात्मनेपदासंभवात्, अदैवादिकत्वाच्च न श्यन्संभवः परस्मैपदित्वाच्च अकर्मकधातुयोगे कर्मकर्तृविवक्षाया अप्यसंभवात् इत्युक्तम् । तदेवानुसृत्य वैयाकरणनव्यैरप्यन्य इत्यर्थग्रहणमिति भाष्यानुक्तत्वादितरग्रहणाच्चायुक्तमित्युक्तम् । तदसमञ्जसं भाष्यानुक्तत्वेन सकलव्याख्यातृग्रन्थविरोधेनान्यथाप्रयोगसाधनस्यानुचितत्वात् । नहि सर्वं भाष्येण कण्ठरवेणैवोच्यते किंतु तदविरोधेन सकलग्रन्थसंमतस्य भाष्याभिप्रेतत्वाभिमानात् । नचार्थपरत्वे पूर्वोक्तदोषः । घटादेक इत्यादौ त्विष्टापत्तिः । घटात्स इत्यत्र तु तच्छब्दस्यान्यार्थत्वाभावात् । घटाद्भिन्न इत्यादावपादानपञ्चमी चेत्सर्वत्र बुद्धिपरिकल्पितापादानसत्त्वात्सूत्रं च व्यर्थम् । संबन्धत्वेन विवक्षायां घटस्य भिन्न इति प्रयोगापत्तिश्च । भिद्धातोः सकर्मकत्वेन भिद्यते इति प्रयोगोपपत्तिश्चेति दिक् ।

यत्तु पृथक्त्वं गुणः नान्योऽन्याभावः । अन्यथा अन्यारादित्यैव सिद्धेः पृथग्विनेति पञ्चमीविधानं व्यर्थं स्यादित्युक्तं तार्किकैः । तन्न, पृथक्शब्दस्यान्योन्याभावार्थकत्वेऽपि पञ्चमी–द्वितीया–तृतीयाविधानार्थं सूत्रपाठस्य सार्थक्यात् । तस्मात्पृथक्त्वं न गुणः किंतु अन्योन्याभावः । अतः रूपं रसात्पृथगित्यादि संगच्छते । अन्यथा गुणे गुणानङ्गीकारात्तदसंगतं स्यात् ।

ऋते कृष्णान्नोत्पद्यते सुखमित्यात्रात्यन्ताभाव ऋतेशब्दार्थः । कृष्णप्रतियोगिकात्यन्ताभावप्रयोज्यः सुखकर्तृकोत्पत्त्यभाव इति बोधः । अथवा कृष्णशब्दस्तद्भक्तिपरस्तत्प्रतियोगिकेत्याद्यर्थः । एतद्योगे ततोऽन्यत्रापि दृश्यत इति द्वितीयापि । ऋते वातं वृक्षः पतितः वाताभाववान्वृक्षः पतनाश्रयः इति बोधः । एवं पुरुषाराधनमृते इत्यपि । आराद्वनादित्यत्र वनप्रतियोगिकसमीपत्वदूरत्ववान्वा ग्राम इति बोधः । दूरान्तिकार्थेति षष्ठ्या अनेन बाधः ।

पूर्वो ग्रामादित्यत्र ग्रामावधिकोदयाचलसन्निहितदेशत्ववानिति बोधः। चैत्रात्पूर्वः फाल्गुन इत्यादौ चैत्रावधिकपूर्वकालभवः फाल्गुन इति बोधः । नन्वत्र पूर्वादिशब्दानां देशकालवृत्तित्वेन दिग्वाचकत्वाभावात्कथमत्र पञ्चमीति चेन्न । दिशि दृष्ट इति व्युत्पत्त्या संप्रत्यदिग्वृत्तित्वेऽपि क्षतिविरहात् अत्र व्याख्यानाद्दिग्विशेषे रूढा एव गृह्यन्ते । तेनैन्द्रयादियोगे न। केचित्तु शब्दग्रहणाद्रूढयोरेव ग्रहणमित्यूचुः ।

गृहाद्गङ्गा मम परा काश्याः सैवाऽपरा ममेत्यादितो गृहावधिकमत्संबन्धिकपरत्ववती गङ्गेति बोधः । ममेत्यत्र तु न पञ्चमी, प्रत्यासत्त्या यस्य यत्रोत्थिताकाङ्क्षा तद्वाचकादेव तत्पदनिमित्ता विभक्तिरिति स्वीकारात् । अवयववाचियोगे तु न 'तस्य परमाम्रेडितम्' इति निर्देशात् । तेन पूर्वं कायस्येति सिद्धिः । प्राक्प्रत्यग्ग्रामादित्यादौ ग्रामावधिकप्राक्प्रत्यग्देशवृत्तित्ववानिति बोधः । नन्वञ्चूत्तरपदत्वात्सध्र्यङ् देवदत्त इत्यादौ दोष इति चेन्न । साहचर्येण दिग्वाचकस्यैव ग्रहणात् । न चैवं व्यर्थं तन् 'षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन' इति षष्ठीबाधनार्थत्वात् । वस्तुतस्तु प्रत्ययाप्रत्ययपरिभाषयैव सिद्धौ तत्र प्रत्ययग्रहणं श्रूयमाणप्रत्यय एव यथा स्यादित्येतमर्थम् । एवं चात्र प्राप्त्यभावेनाञ्चूत्तरपदग्रहणं मास्तु ।

दक्षिणा ग्रामात् दक्षिणाहि ग्रामादित्यादौ ग्रामावधिकदक्षिणादिशीत्यर्थः ।

अपादाने पञ्चमीति सूत्रे यतश्चाध्वकालनिर्माणमिति वार्तिकप्रत्याख्यानाय भाष्ये उक्तमिदमत्रप्रयोक्तव्यं सन्न प्रयुज्यते कार्तिक्याः प्रभृत्याग्रहायणी मासे इति तेन प्रभृत्यर्थयोगे पञ्चमीविधायकानुमितानुशासनेन भवात्प्रभृति आरभ्य वा सेव्यो हरिरित्यत्र पञ्चमी । आद्यक्षणमारभ्येत्यत्र तु आरभ्येत्यस्य गृहीत्वेत्यर्थकत्वेन कर्मत्वाद्द्वितीया ।

अपपरिबहिर्योगे समासविधानाद्बहिर्योगे पञ्चम्यनुमानाद्ग्रामाद्बहिरित्यादौ पञ्चमी । अवधित्वरूपसंबन्धः पञ्चम्यर्थः । ग्रामावधिकबहिर्देशे इति बोधः । अपपरी वर्जने आङ्मर्यादावचने इत्यनुशासनाभ्यां विहितकर्मप्रवचनीयसंज्ञकानामेषां योगे पञ्चम्यपाङ्परिभिरित्यनेन अपहरेः परिहरेः संसारः आ पाटलिपुत्राद्वृष्टो देव इत्यादौ पञ्चमी । हरिप्रतियोगिकवर्जनप्रयोज्यः संसार इति बोधः। पाटलिपुत्रावधिकवृष्टिकर्ता देव इति बोधः । अवधित्वरूपः संबन्धः पञ्चम्यर्थः ।

'प्रतिः प्रतिनिधिप्रतिदानयोः' इत्यनुशासनविहितकर्मप्रवचनीयसंज्ञकप्रतियोगे 'प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्मात्' इत्यनेन प्रद्युम्नः कृष्णात्प्रति, तिलेभ्यः प्रतियच्छति माषानित्यादौ पञ्चमी। प्रतियोगित्वरूपः संबन्धः पञ्चम्यर्थः। कृष्णप्रतियोगिकसादृश्यवानिति बोधः। तिलग्रहणपूर्वकं माषप्रतिदानमिति बोधः। केचित्तु कर्मत्वं पञ्चम्यर्थः। तथा च तिलकर्मकभावनाजन्योपकारीभूता माषकर्मिका दानभावना चैत्रवृत्तिरिति बोधं वदन्ति।

कर्तृवर्जितं यदृणं हेतुभूतं ततः पञ्चमीत्यर्थकाद् 'अकर्तर्यृणे पञ्चमी' इत्यनुशासनाच्छताद्बद्ध इत्यादौ पञ्चमी। शतहेतुकबन्धनकर्मेति बोधः।

गुणे हेतावस्त्रीलिङ्गे पञ्चमीविधायकात् 'विभाषा गुणेऽस्त्रियाम्' इत्यनुशासनाज्जाड्यात् जाड्येन वा बद्ध इत्यादौ पञ्चमी, जाड्यहेतुकबन्धनकर्मेति बोधः। धूमादग्निमान्, नास्ति घटोऽनुपलब्धेरित्यादौ तु विभाषेतियोगविभागात्पञ्चमी। 'बाहुलकं प्रकृतेस्तनुदृष्टेः' इति वार्तिकप्रयोगोऽप्यत्र मानम्। धूमहेतुकमग्निमत्त्वज्ञानम्, अनुपलब्धिहेतुकं घटास्तित्वाभावज्ञानमिति बोधः।

'पृथग्विनानानाभिस्तृतीयान्यतरस्याम्' इत्यनुशासनात्पृथग्रामेण रामाद्रामं वेत्यादौ पञ्चमी। पञ्चम्यादीनां प्रतियोगित्वरूपः संबन्धोऽर्थः। पृथक्त्वं च गुण इति तार्किकाः। तत्र चेदमेव ज्ञापकमिति वदन्ति। तत्तु प्रागेव दूषितम्। तथाच रामप्रतियोगिकभेदवान् कृष्ण इति बोधः। तत्प्रतियोगिकपृथक्त्वमिति वा। विनानानाशब्दयोरत्यन्ताभावोऽर्थः। रामप्रतियोगिकात्यन्ताभाव इति बोधः।

'स्तोकाल्पकृच्छ्रकतिपयानामसत्त्ववाचकानां करणे षष्ठीतृतीयाविविधायकात् 'करणे च स्तोकाल्पकृच्छ्रकतिपयस्यासत्त्ववचनस्य' इत्यनुशासनेन स्तोकेन स्तोकाद्वा मुक्त इत्यादौ तृतीयापञ्चम्यौ। स्तोकादिशब्दाः शुक्लादिशब्दवद्धर्मे धर्मिणि च वर्तन्ते। एवं चाद्ये गुणक्रियाव्यतिरिक्तजात्याश्रय(?)रूपसत्त्वभिन्नत्वात्पञ्चमीतृतीये स्तोककरणकमोचनकर्मीभूत इति बोधः। एवं कृच्छ्रादियोगेऽपि। धर्मस्य करणत्वं तु स्वाश्रयद्वारा।

दूरान्तिकार्थैर्योगे पदान्तराद्विभाषा षष्ठीविधायकात् 'दूरान्तिकार्थैः षष्ठ्यन्यतरस्याम्' इत्यनुशासनाद्ग्रामोत्तरषष्ठीपञ्चम्यौ। तथा दूरान्तिका-

र्थकशब्देभ्यो तृतीयापञ्चमीविधायकात् 'दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च' इत्यनुशासनाद्दूराद्दूरं दूरेण वेत्यादौ द्वितीयादयः । आद्ये संबन्धः पञ्चम्यर्थः । द्वितीये तु प्रातिपदिकार्थमात्रमिति विवेकः । ग्रामसंबन्धिदूरदेशवृत्ति गमनमिति बोधः । एवं ग्रामाद्ग्रामस्य वाऽन्तिकादन्तिकमन्तिकेन वेत्यादावपि बोधः ।

इति पञ्चमी ।

षष्ठ्यर्थनिर्णयः ।

कारकप्रातिपदिकार्थव्यतिरिक्तस्वस्वामिभावादिरूपसंबन्धविवक्षायां 'षष्ठी शेषे' इत्यनेन संबन्धरूपे षष्ठीविधानाद्राज्ञः पुरुष इत्यादौ राजपदोत्तरं षष्ठी । राजनिरूपितसेवकत्वरूपसंबन्धवान्पुरुष इति बोधः । संबन्धत्वेन सबन्धः षष्ठ्यर्थः । विशेषरूपेण वाच्यत्वे तु नानार्थतापत्तेः । तात्पर्यवशात्तु विशेषबोधः । अत एव संयोगादिसत्त्वे स्वत्वरूपसंबन्धाभावे चैत्रस्य नेदं वास इत्युपपद्यते । एवं दण्डिनमानयेत्युक्ते दण्डस्वामी नानीयते अपि तु दण्डसंयोगवानेव । न च चित्रगुः पुरुष इत्यत्र संबन्धस्य षष्ठ्यर्थत्वे सामानाधिकरण्यं न स्यादिति वाच्यम् । संबन्धेनाक्षिप्तसंबन्धिना सामानाधिकरण्यसंभवात् । उक्तं च—

संबन्धेनैव संबन्धी प्रत्ययेनोपदिश्यते ।
पुनस्तस्याभिधाशक्तिं कः श्रुतेः परिकल्पयेत् ' इति ।

संबन्धिवादिनस्तु संबन्धस्य षष्ठ्यर्थत्वे आरुण्यादीनां स्ववाक्योपात्तद्रव्याभिनिवेश इत्येतत्प्रतिपादकारुण्याधिकरणाद्युच्छेदापत्तिः तस्मात्संबन्धी अर्थः । तथा च विभक्त्यर्थसंख्याप्रकारकबोधे विभक्तिजन्योपस्थितिर्हेतुः इति लघुभूतः कार्यकारणभावः । संबन्धस्य वाच्यत्वे तु प्रकृतिजन्योपस्थितिर्हेतुरिति कल्प्यमिति गौरवम् । एकराजकीयसंबन्धद्वयाभिधाने राज्ञोरित्यापत्तेः । एवं च शेषषष्ठ्याः संबन्धी एवार्थः । भूषणादौ ' संबन्धः शक्तिरेव वा ' इत्यत्र संबन्धपदं अर्शआद्यजन्तं बोध्यम् । एवं च विशेषरूपेण षष्ठ्यर्थत्वाभावे स्वत्वं स्वामित्वं वा ...
.... ।

वैयाकरणनव्यैः—"षष्ठ्यर्थसंबन्धस्य सर्वत्र क्रियाकारकपूर्वकत्वमेव, सा च कचिच्छ्रुता कचिदध्याहृता । अत एव हरिणा—

संबन्धः कारकेभ्योऽन्यः क्रियाकारकपूर्वकः ।
श्रुतायामश्रुतायां या क्रियायामभिधीयते ॥

इति क्रियाकारकपूर्वकत्वमेव संबन्धस्योक्तं सामीप्याद्यपि बुद्धिस्थैकदेशाधिकरणकस्थितिक्रियाकर्तृत्वनिमित्तकमित्याद्यूह्यम् । अत एव पर्वतस्य वृक्षा इति न, वृक्षपर्वतयोराधाराधेयभावमूलकसंबन्धाभावात् । संयोगो हि नाधाराधेयमूलकः विपरीतं तस्यैव तन्मूलकत्वात्—" इत्युक्तम् । तन्न, मानाभावात् गौरवाच्च । न च हरिकारिका मानम् । तस्याः भिन्नार्थत्वात् । तथाहि षष्ठ्यर्थसंबन्धः कर्म, तन्निधा तद्बोधिका षष्ठ्यपि त्रिधा । केवलसंबन्धबाधिका, कारकाणामविवक्षापूर्वकसंबन्धबोधिका, कर्तृकर्मादिसंबन्धबोधिका च । तत्र मातुः स्मरतीत्यादौ द्वितीया, ओदनस्य पाचक इत्यादौ तृतीया, सामीप्ये सर्वे (?), चित्रा गावो यस्येत्यादावाद्या । न चात्र विवदितव्यं भाष्ये गुरोरवत (?) इति न्यासे स्पष्टमेव सामीप्यार्थे रवत् (?) पदस्याभिधानात् । भवद्भिरपि अस्तेर्भूरित्यादावस्तेः समीपेऽनन्तरे वेति भाष्यव्याख्यानावसरे षष्ठ्यन्तपदघटितवाक्ये सामीप्यार्थबोधः स्वीकृतः । स च समीपादिपदाध्याहारेण । एवं च चित्रा गावो यस्येत्यादावपि सामीप्यबोधः सति तात्पर्ये तवापीष्टः । एतावान्परो भेदः— तव गुरुभूताध्याहारेण बोध इति दुराग्रहः, मम तु षष्ठ्यर्थ इति । तत्र षष्ठ्याः सामीप्यार्थकत्वमेव युक्तम् । अन्यथाऽस्तेरिति षष्ठीश्रवणानन्तरं सामीप्यार्थशङ्कैव न स्यात् । नहि पदाध्याहारेण शङ्का युक्ता पूर्वमेव वाच्यार्थोपस्थित्या निराकाङ्क्षत्वात् । भवद्भिरपि सामीप्याद्यपीत्यादिना स्वीकृतत्वाच्चेति दिक् । एवं च हरिकारिकायां मातुः स्मरतीत्यादौ कर्मत्वाद्यविवक्षापूर्वको यः संबन्धः स उक्तः । अत एवान्यपदं सार्थकमन्यथा संबन्धः क्रियापूर्वक इत्येव ब्रूयात् । तथा चान्यपदं संबन्धेनान्वेति । एवं च कारकेभ्यः कारक(द्वारा)क्रियान्वितप्रातिपदिकेभ्यः उत्पन्नया षष्ठ्याऽन्यः संबन्धः कारकाविवक्षापूर्वकसंबन्ध उच्यते इत्येवार्थः साधुः । एवं च पर्वतस्य वृक्षा इत्यपि पर्वतसंबन्धिवृक्षा इत्यर्थे साध्वेव ।

स च संबन्धः जन्यजनकभावः । ग्रामस्य यथा साधारण्यक(?)सस्थण्डिलकत्वार्थकत्वमादाय कूपादीनां ग्रामावयवत्वमादायावयवावयविभावसंबन्धे ग्रामस्य कूप इत्यादौ षष्ठीति भवद्भिरुक्तं, तथा मयाऽपि पाषाणमृद्वृक्षादिसमुदायस्य पर्वतपदवाच्यत्वस्वीकारेणावयवावयविभावसंबन्धो-

ऽपि वक्तुं शक्यः । वृक्षपर्वतयोरित्यादिकं च यत् पर्वतस्य वृक्षा इत्यादिप्रयोगाभावसाधकोपन्यसनं तन्मुधैव आधाराधेयभावस्य संयोगमूलत्वेऽपि तदविवक्षायां षष्ठ्या दुर्वारत्वात् । अन्यथा व्रजमवरुणद्धि गामित्यादौ षष्ठ्यप्राप्तौ तदपवादकाऽकथितं चेति द्वितीया न स्यादिति सर्वोपप्लव एव स्यात् । अस्तु वा भवदुक्त एव हरिकारिकार्थः, तथापि सामीप्यादौ तु बुद्धिपरिकल्पितक्रियाकारकसंबन्धस्य स्वीकारात् तद्रीत्यात्रापि सामीप्यसंबन्धे पर्वतस्य वृक्षा इति वक्तुं शक्यत्वात् । यदपि किंच संयोगो न संबन्धः संबन्धस्य पदार्थयोजनामात्रहेतुत्वात् । संयोगस्य स्वतः पदार्थत्वात् । सांसर्गिकविषयतया तस्याभानाच्च । संबन्धश्च षष्ठ्यादिभिर्वोच्यन्ते । संबन्धपदेनापि सांसर्गिकविषयतावत्त्वेन नोच्यत इति संबन्धः सर्वदा पदागम्यः, संयोगस्तु न कदापि षष्ठ्यादिभिः तथाविषयतयोच्यते । इमौ संयुक्तावित्येव तत्र व्यवहारात् । तत्र संबन्धव्यवहारस्तूभयाश्रितत्वरूपसंबन्धधर्मवत्त्वाद्गौणः, अत एव मतुप्सूत्रे वृक्षवान्पर्वत इत्याद्यर्थे सप्तम्युपादानं, गोमान् देवदत्त इत्याद्यर्थे च षष्ठ्युपादानमिति भाष्ये उक्तम् । षष्ठ्यर्थश्च सांसर्गिकविषयतयैव भासते । अत एव ' षष्ठी शेषे ' इति सूत्रे भाष्ये राज्ञः पुरुष इत्यत्र राजा विशेषणं पुरुषो विशेष्य इत्युक्तम् । अन्यथा संबन्धे विशेष्यतया विशेषणतया वा ब्रूयात् । राज्ञः पुरुष इत्यत्र स्वस्वामिभावः षष्ठ्यर्थः । स च स्वत्वस्वामित्वसमूहरूपः । अत एव स्वस्वामिभावोऽवयवावयवविभाव आधाराधेयभावः प्रतियोग्यनुयोगिभावो विशेषणविशेष्यभावः संबन्ध इत्यादि व्यवहार इत्युक्तं तदपि न । संयोगस्य संबन्धत्वे षष्ठ्यर्थत्वे च बाधकाभावात् । न चोक्तहेतुद्वयेनोक्तं बाधकमिति वाच्यम् । तस्यासंवर्धतत्वात्(?) । तथाहि किं संयोगस्य संबन्धत्वं नास्तीति ब्रूषे उत षष्ठ्यर्थत्वं नास्तीति, यद्वा संबन्धपदाभिधेयत्वं नास्ति । नाद्यः संयोगस्य स्वतःपदार्थत्वेऽपि सांसर्गिकविषयतयाऽभानेऽपि संबन्धत्वे बाधकाभावात् । नहि संबन्धस्यापदार्थत्वं सांसर्गिकविषयतयैव वा भानं नियतं येन भवदुक्तं संगच्छेत । अन्यथा राजा स्वामी देवदत्तः स्वमित्यादावपि स्वस्वामिभावस्य पदार्थतया सांसर्गिकविषयतयाऽभानेन च स्वस्वामिभावादीनामपि उक्तरीत्या संबन्धत्वं न स्यात् । उभयोस्तुल्यत्वात् । नच—'संबन्धः षष्ठ्यादिभिर्वोच्यते संबन्धपदेनापि सांसर्गिकविषयतावत्त्वेन नोच्यते इति संबन्धः सर्वथा पदागम्यः, संयोगस्तु न कदापि

षष्ठ्यादिभिस्तथाविषयतयोच्यते, इमौ संयुक्तावित्येव तत्र व्यवहारा- त्'—इत्यादिनोक्तमेव भेदकमिति वाच्यम्। गङ्गायास्तीरे इत्यादौ संयुक्त- पदाभावेऽपि षष्ठ्या गङ्गातीरयोः संयोगसंबन्धस्य प्रतीयमानत्वेन भव- दुक्तभेदकाभावात्। रथस्याश्वाः अन्यस्वामिकपीताम्बरदण्डादिसंयुक्तेऽपि पुरुषे पीताम्बरोऽयं दण्डीत्यादिव्यवहाराच्च। संयोगाभावे तु स्वस्वामि- भावे सत्यपि न तादृशप्रयोगः। भवद्भिरपि, तत्र संबन्धव्यवहारस्तु उभयाश्रितत्वरूपसंबन्धधर्मवत्त्वाद्गौण इत्यादिना संयोगस्य संबन्ध- त्वाङ्गीकारात्। तस्य गौणत्वे प्रमाणाभावात्। न च मतुप्सूत्रे वृक्षवान्पर्वत इत्याद्यर्थे सप्तम्युपादानमिति भाष्यं मानम्। पर्वताधिकर- णको वृक्ष इति विवक्षायां तस्य सार्थक्यात्। गोमान् देवदत्त इत्याद्यर्थे षष्ठ्युपादानमित्यत्र तु आदिपदात्षष्ठ्यन्तग्रहणम्। न चात्र संयोगस्य संबन्धत्वे पर्वतस्य वृक्षा इति प्रयोगस्येष्टत्वेऽत्रैव षष्ठ्यन्तप- दसार्थक्ये गोमान् देवदत्त इति दूरमनुधावनं व्यर्थमिति वाच्यम्। अत्रा- न्यतरोपादानेनापि प्रयोगसिद्धिः, गोमान् देवदत्त इत्यत्र त्वधिकर- णत्वविवक्षायाः असंभवान्मुख्यषष्ठ्यन्तस्यैवोदाहरणमित्यभिप्रायेण तस्य सार्थक्यात्। न च भवन्ति पर्वते वृक्षा न च ते तस्य भवन्तीति स्पष्टमेव भाष्ये पर्वतस्य वृक्षा इति प्रयोगाभावः प्रतिपादित इति वाच्यम्। यदा- धिकरणत्वेन विवक्षा तदा षष्ठीप्रतिपाद्या न भवन्तीत्येवमभिप्रायक- त्वात्। एवं च संयोगस्य संबन्धत्वे षष्ठ्यर्थत्वे वा संबन्धपदाभिधेयत्वे वा भाष्यविरोधरूपदोषाभावात्तदभावे वा फलाभावाच्च दुराग्रहेण संबन्ध- त्वाभावप्रतिपादनमयुक्तमिति दिक्।

यदपि संबन्धश्च षष्ठ्यादिभिरेवोच्यते संबन्धपदेनापि सांसर्गिक- विषयतावत्त्वेन नोच्यत इति सर्वथा पदागम्य इति संयोगभेदकफ- क्किकायामुक्तं तदपि न, तत्रैवकारव्यावर्त्याभावात्। संबन्धस्य सांस- र्गिकविषयतया भानाभावाभ्युपगमे तस्य षष्ठ्यर्थत्वमेव न स्यात्। षष्ठ्यर्थश्च सांसर्गिकविषयतयैव भासत इति भवदभ्युपगमविरुद्धत्वात्। यदपि षष्ठ्यर्थः स्वत्वस्वामित्वादिसमूहरूप इत्युक्तं तदपि न गौरवात्। स्वत्वादेः पुरुषादावन्वयेन प्रत्ययानां प्रकृत्यर्थान्वितेत्यादिनियमभ- ङ्गापत्तेश्चेति दिक्।

तस्मात्संबन्धत्वेन संबन्धबोधे पर्वतस्य वृक्षा इति प्रयोगः साधुरेव।

तत्र च संबन्धत्वेन संबन्धः प्रकारत्वेन भासते प्रत्ययोपात्तत्वात् । यत्र तु षष्ठी नास्ति नीलोत्पलादौ तत्र संसर्गतयेति विवेकः । न च संबन्धस्य प्रकारत्वेन भानाभ्युपगमे षष्ठी शेष इति सूत्रस्थभाष्यविरोधः । तत्र हि राज्ञः पुरुष इत्यत्र राजा विशेषणं पुरुषो विशेष्य इत्युक्तम् । षष्ठ्यर्थसंबन्धस्य प्रकारत्वेन भाने तु संबन्धे विशेषणतया विशेष्यतया वा ब्रूयादिति वाच्यम् । राजनिष्ठप्रकारतानिरूपितपुरुषनिष्ठविशेषतासंबन्धस्य प्रकारतया भानाभ्युपगमेऽपि संबन्धे तयोर्विशेषणविशेष्यभावासंभवात् । स्वत्वस्वामित्वादिविशेषरूपेण भानं तु सांसर्गिकविषयतयैव अत एव भाष्यकारेण राजा विशेषणं पुरुषो विशेष्य इति स्पष्टीकृतमिति ग्रन्थगौरवभयादुपरम्यते । प्रकृतमनुसरामः—

हेतुशब्दप्रयोगे हेतुत्वेन हेतौ द्योत्ये 'षष्ठी हेतुप्रयोगे' इत्यनुशासनेनान्नस्य हेतोर्वसतीत्यत्र षष्ठी । एकाश्रयकोऽन्नहेतुको वास इति बोधः । अन्ननिष्ठजनकतानिरूपितजन्यताश्रयो वास इति बोधः । अन्नं हेतुं पश्येत्यत्र हेतुशब्दप्रयोगेऽपि तद्द्योत्यत्वाभावान्न षष्ठी ।

सर्वनाम्नः पूर्वोक्तविषये तृतीयाषष्ठीविधायकात् 'सर्वनाम्नस्तृतीया च' इत्यनुशासनात्केन हेतुना कस्य हेतोर्वा वसतीत्यादौ तृतीयाषष्ठ्यौ । एकाश्रयिका प्रश्नविषयहेतुका वासक्रियेति बोधः ।

'निमित्तकारणहेतुषु सर्वासां प्रायो दर्शनम्' इत्यनुशासनात्किं निमित्तं, केन निमित्तेन, कस्मै निमित्तायेत्यादौ प्रथमादयः सर्वाः विभक्तयः । प्रायोग्रहणादसर्वनाम्नः प्रथमाद्वितीये न । पूर्वसूत्रद्वयमप्यनेन गतार्थम् ।

दिग्देशकालरूपार्थकप्रत्यययोगे अन्यारादितिपञ्चम्यपवादषष्ठीविधायकषष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेनेइत्यनुशासनेन ग्रामस्य दक्षिणतः पुरः पुरस्तादित्यादौ षष्ठी, प्रतियोगित्वरूपः संबन्धः षष्ठ्यर्थः । एवं च विन्ध्याद्दक्षिणतः इत्यादिप्रयोगाः प्रामादिका एव ।

एनबन्तेन योगे षष्ठ्यपवादद्वितीयाविधायकेन 'एनपा द्वितीया' इत्यनेन उत्तरेण ग्राममित्यादौ द्वितीया । अत्रैनपेति योगविभागे .... । तत्रागारं धनपतिगृहादुत्तरेणास्मदीयमित्यत्र तूत्तरेणेति तोरणेनेत्यनेन समानाधिकरणं तृतीयान्तं नत्वेनबन्तं तथा च नास्य प्रवृत्तिः ।

दूरान्तिकार्थैर्योगे षष्ठीपञ्चमीविधायकाद्दूरान्तिकार्थैः षष्ठ्यन्यतरस्यामित्यनुशासनाद्ग्रामस्य ग्रामाद्वा दूरमन्तिकं वेत्यत्र षष्ठीपञ्चम्यौ। प्रतियोगित्वसंबन्धो विभक्त्यर्थः।

व्यवहृपणोरितिसूत्रपरामर्शितच्छब्दबलेन द्यूतार्थस्य क्रयविक्रयरूपव्यवहारार्थस्य च दिवः कर्मणि कर्मत्वेन विवक्षिते षष्ठीविधायकात् 'दिवस्तदर्थस्य' इत्यनुशासनाच्छतस्य दीव्यतीत्यादौ षष्ठी। शतकर्मिका क्रीडा व्यहारो वा देवदत्तकर्तृक इति बोधः। सोपसर्गे तु विभाषोपसर्गे इत्यनेन विकल्पाच्छतस्य शतं वा प्रतिदीव्यतीत्यादौ षष्ठी। बोधः पूर्ववत्।

देवतासंप्रदानकेऽर्थे वर्तमानयोः प्रेष्यब्रुवोः कर्मणो हविर्विशेषस्य वाचकात् षष्ठीविधायकात् 'प्रेष्यब्रुवोर्हविषो देवतासंप्रदाने' इत्यनुशासनादग्नये छागस्य हविषोऽनुब्रूहि प्रेष्य वेत्यत्र कर्मत्वे षष्ठी। छागावयवीभूतवपासंबन्धिहविर्भूतमेदःकर्मकः प्रैष इति बोधः। प्रस्थितत्वेन विशेषणत्वे तु प्रस्थिते प्रतिषेध इति वार्तिकेन षष्ठीप्रतिषेधे द्वितीयैव इन्द्राग्निभ्यां छागस्य हविषो मेदः प्रस्थितं प्रेष्येति प्रयोगः।

कृद्योगे कर्तृकर्मणोः षष्ठीविधायकात् 'कर्तृकर्मणोः कृति' इत्यनुशासनात्कृष्णस्य कृतिः, जगतः कर्ता कृष्णः, इत्यत्र षष्ठी। कृष्णकर्तृका कृतिः। जगत्कर्मककृत्याश्रयाभिन्नः कृष्ण इति बोधः। स्तोकं पाक इत्यत्र तु न, कर्तृसाहचर्येण धात्वर्थकर्मण्येव तत्प्रवृत्तेः। सूत्रे कृद्ग्रहणाद्भ्रिको भूमिं देवदत्तः, देवदत्तेन शत्योऽश्व इत्यादौ तद्धितस्य ये कर्तृकर्मणी तत्र न। कृतपूर्वी कटमित्यत्रापि भावे क्तान्तेन पूर्वशब्दस्य समासे, इनौ, पश्चात्कटेन संबन्धे कृन्मात्रयोगाभावान्नलोकेति निषेधाद्वा षष्ठ्यभावे द्वितीया। एवमोदनं पाचकतम इत्यत्रापि। अन्ये तु ओदनस्य पाचकतम इति षष्ठी भवत्येव। कृद्ग्रहणेन तद्धितार्थं प्रति गुणीभूतक्रियायाः ये कर्तृकर्मणी तत्रैव व्यावर्तनादित्याहुः। नच धायैरामोदमिति भट्टिप्रयोगोऽनुपपन्नः। अनित्यमिदं तदर्हमिति द्वितीयान्ततच्छब्दप्रयोगात्। ननु समस्तमेवास्तु इति चेन्न। 'तत्र तस्येव' इत्यत्र योगविभागेन तत्रेव तस्य अर्हमित्येवंरूपेणैव सिद्धे तच्छब्दोपादानेन समासाभावबोधनात्। ननु भिदेर्ण्यन्ताण्ण्वुलि भेदिका देवदत्तस्य काष्ठानामित्यादौ पाचयत्योदनं देवदत्तेन यज्ञदत्त इत्यादाविव मुख्यत्वात्प्रयोजककर्तृवाचकादेव षष्ठी स्यादिति चेन्न। वैषम्यात्। तथाहि तत्रैकेन

लकारेण कर्तृद्वयबोधासंभवादुक्तन्यायः प्रवर्तते । प्रकृते तु ओदनः पाच्यते देवदत्तेन यज्ञदत्तेनेत्यादिवदुपपत्तिः । नेताश्वस्य स्रुघ्नस्य स्रुघ्नं वेत्यत्र गुणकर्मणि षष्ठीविकल्प इष्यते । स्रुघ्नसंबन्ध्यश्वकर्मकनयनकर्तेति बोधः ।

उभयोः प्राप्तिर्यस्मिन्कृति तत्र कर्मण्येव षष्ठीनियामकादुभयप्राप्तौ कर्मणीत्यनुशासनादाश्चर्यो गवां दोहोऽगोपेनेत्यत्र कर्मण्येव षष्ठी। अगोपकर्तृको गोकर्मको दोह आश्चर्य इति बोधः । स्त्रीप्रत्यययोरकाकारयोर्नियमाभावाद्भेदिका बिभित्सा वा रुद्रस्य जगत इत्यादावुभयत्रापि षष्ठी । रुद्रकर्तृका जगत्कर्मिका भेदनक्रियेति भेदितुमिच्छा चेति बोधः । सुटा सीयुटो बाधा नेत्यत्र तु करणे तृतीया ।

अकाकारव्यतिरिक्तस्त्रीप्रत्ययकर्तरि षष्ठीविकल्पविधायकेन ‘ शेषे विभाषा ’ इत्यनुशासनेन विचित्रा जगतः कृतिर्हरेर्हरिणा वेत्यत्र कर्तरि षष्ठीविकल्पः । हरिकर्तृका जगत्कर्मिका क्रिया विचित्रेति बोधः । शब्दानामनुशासनमाचार्येणाचार्यस्य वेति प्रयोगानुरोधात्सामान्यमेव शेषशब्दार्थः । आचार्यकर्तृकं शब्दकर्मकं विविच्याऽसाधुभ्यः प्रविभज्य बोधनसाधनमिति बोधः ।

वर्तमानार्थकक्तप्रत्यययोगे षष्ठीविधायकात् ‘ क्तस्य च वर्तमाने ’ इत्यनुशासनाद्राज्ञां मतो बुद्धः पूजितो वेत्यत्र कर्तरि षष्ठी । राजकर्तृकवर्तमानेच्छाज्ञानपूजाश्रय इति बोधः । गतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्चेति वर्तमाने क्तः । एवं राज्ञां मतं, ‘ नपुंसके भावे क्तः ’ इत्यत्रापि । पूजितो यः सुरासुरैरित्यादौ भूते क्तः न तु वर्तमाने, तेन तृतीया तत्रोपपद्यते । छात्रस्य हसितमित्यत्र शेषत्वविवक्षया षष्ठी, कर्तृत्वविवक्षायां तु तृतीयैव ।

‘ क्तोऽधिकरणे च ध्रौव्यगतिप्रत्यवसानार्थेभ्यः ’ इत्यनेन विहितस्य क्तस्य योगे षष्ठीविधायकादधिकरणवाचिनश्चेत्यनुशासनादिदमेषामासितं गतं भुक्तं वेत्यत्र षष्ठी, एतत्कर्तृकमासनं गमनं भोजनमिति बोधः । अत्रोभयप्राप्तौ कर्मणीतिनियमाभावादिदमेषां भुक्तमोदनस्येत्युभयत्रापि षष्ठी । ओदनकर्मकमेतत्कर्तृकं भोजनमिति बोधः ।

लादेशः उः उकः अव्ययं निष्ठा खलर्थस्तृनेतैर्योगे कर्तृकर्मणोरित्यादिप्राप्तषष्ठीनिषेधविधायकेन ‘ न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनामित्यनुशास-

नेन षष्ठीनिषेधात्कुर्वाणः सृष्टिं हरिरित्यादौ द्वितीया, सृष्टिकर्मकक्रियाश्रयाभिन्नो हरिरिति बोधः । हरिं दिदृक्षुरलंकरिष्णुरित्यादौ हरिकर्मकदर्शनेच्छावान् तत्कर्मकालंकरणकर्ता वेति बोधः । दैत्यान्घातुको हरिरित्यादौ दैत्यकर्मकहननकर्त्रभिन्नो हरिरिति बोधः । कमेरनिषेधः इत्यनेन निषेधाभावबोधनाल्लक्ष्म्याः कामुक इत्यत्र षष्ठी । लक्ष्मीविषयकेच्छावानिति बोधः । जगत्सृष्ट्वा सुखं कर्तुमित्यत्र जगत्सर्जनोत्तरकालिका सुख क्रियेति बोधः । दैत्यान्हतवानित्यत्र दैत्यकर्मकभूतहननाश्रय इति बोधः । विष्णुना हता दैत्या इत्यत्र विष्णुकर्तृकहननकर्माभिन्नाः दैत्या इति बोधः । ईषत्करः प्रपञ्चो हरिणेत्यत्र हरिकर्तृकं प्रपञ्चकर्मकमीषत्करणमिति बोधः । सोमं पवमानः आत्मानं मण्डयमानः कर्ता लोकान्वेदमधीयन् इत्यादौ तृन्निति प्रत्याहारग्रहणान्निषेधः, बोधः प्राग्वत् ।

शतृप्रत्ययान्तद्विषधातुयोगे विकल्पेन षष्ठीविधायकात् ' द्विषः शतुर्वा ' इत्यनुशासनान्मुरस्य मुरं वा द्विषन्नित्यादौ षष्ठी । मुरकर्मकद्वेषकर्तेति बोधः ।

भविष्यत्यकस्य भविष्यदाधमर्ण्यार्थेकेनश्च योगे षष्ठीनिषेधविधायकादकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोरित्यनुशासनात्सतः पालकोऽवतरति व्रजं गामी शतं दायीत्यादौ न षष्ठी, सत्कर्मकभविष्यत्पालनकर्तेति बोधः । निषेधस्तु कर्तृत्वकर्मत्वप्रकारकबोधे षष्ठ्या असाधुत्वबोधकः, संबन्धत्वेन बोधे तु साधुत्वमेव ।

कृत्यानां योगे कर्तरि षष्ठीविकल्पविधायकात् ' कृत्यानां कर्तरि वा ' त्यनुशासनान्मया मम वा सेव्यो हरिरित्यादौ षष्ठीविकल्पः । मत्कर्तृकसेवनकर्माभिन्नो हरिरिति बोधः ।

तुलोपमाशब्दभिन्नैः पदान्तरनिरपेक्षैः तुल्यार्थैर्योगे संबन्धसामान्ये षष्ठ्यां प्राप्तायां पाक्षिकतृतीयाविधायकात् ' तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयान्यतरस्याम् ' इत्यनुशासनात्तुल्यः सदृशः समो वा कृष्णस्य कृष्णेनेत्यत्र पाक्षिकी तृतीया । कृष्णप्रतियोगिकसादृश्यवानिति बोधः । गौरिव गवय इत्यत्र पदान्तरसापेक्षत्वेनेवादीनां तुल्यार्थत्वात्षष्ठी न ।

आयुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितैः तदर्थैर्योगे आशिषि शेषे पाक्षिकचतुर्थीविधायकात् ' चतुर्थी चाशिष्यायुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितैः '

इत्यनुशासनादायुष्यं चिरंजीवितं मद्रं भद्रं कुशलं निरामयं सुखं शमर्थः प्रयोजनं हितं पथ्यं कृष्णस्य कृष्णाय वा भूयादित्यादौ चतुर्थी षष्ठी च। अनाशिषि हितयोगे शेषेषष्ठीं बाधित्वा चतुर्थीविधायकेन ' हितयोगेच ' इत्यनेन चतुर्थ्येव भवति, देवदत्ताय हितमिति ॥

इति षष्ठी ।

सप्तम्यर्थनिर्णयः ।

कर्तृकर्मद्वारा तन्निष्ठक्रियायाः औपश्लेषिकवैषयिकाभिव्यापकरूपाधारकारकस्याधारोऽधिकरणमित्यधिकरणसंज्ञायां सप्तम्यधिकरणे चेत्यनेन कटे आस्ते स्थाल्यां पचतीत्यादौ यत्किंचिदवयवावच्छेदेनाधारस्याधेयेन व्याप्तिरूपोपश्लेषाधिकरणे सप्तमी । कटाधिकरणिकैकर्तृकासनक्रियेति बोधः । स्थाल्यधिकरणिकैकर्तृका पचिक्रिया । चैत्रतण्डुलादिपदसमभिव्याहारे तु एकचैत्राभिन्नकर्तृका तण्डुलकर्मिकेति विशेषः । विषयतासंबन्धेनावच्छिन्नाधिकरणस्य तु मोक्षे इच्छास्तीति । मोक्षविषयकेच्छाकर्तृका सत्तेति बोधः । अत्र धात्वर्थं प्रति मोक्षस्य कर्मत्वेऽपि प्रत्ययोपात्तसिद्धेच्छाद्वारास्तिक्रियायामन्वयस्य विवक्षितत्वेन सप्तमी । धात्वर्थं प्रत्यन्वयविवक्षायां तु कर्मत्वात्कर्तृकर्मणोः कृतीति षष्ठ्येव । मोक्षे इच्छास्तीतिवन्मोक्षे इच्छतीति न प्रयोगः । उपमानेऽस्तिक्रियानिरूपितकर्तृद्वाराधिकरणत्ववदुपमेये तदभावेनेच्छतिनिरूपितकर्मत्वाद् द्वितीयैव ।

परे तु अधिकरणस्य कर्त्राद्यन्वय एव, कटाधिकरणकचैत्रकर्तृकमासनमित्यादिरीत्या बोधः । अत एवाक्षशौण्ड इत्यादौ सामर्थ्यात्समासः । अक्षविषयकप्रावीण्यवानिति बोधानुभवात् । यत्तु 'एवं चात्रान्तर्भूतक्रियाद्वारा सामर्थ्यमिति कैयटादयश्चिन्त्याः ' इत्याहुर्वैयाकरणन्यास्तत्रेयं चिन्ता—अन्तर्भूता या शौण्डपदार्थप्रावीण्यरूपा क्रियेति सर्वानुभूत एवार्थः कैयटेनोक्त इति न वैलक्षण्यम् । अवच्छेदकावच्छेदेन वृत्तिमद्रूपाभिव्यापकाधिकरणे तु सर्वस्मिन्नात्माऽस्तीत्यादौ । ननु खे शकुनय आतपे तिष्ठन्तीत्यादावुक्तविधाधिकरणाभावात्कथं सप्तमीति चेत् । अत्र केचित् । आतपपदस्मृततत्संबन्धिनि लक्षणया तत्संयुक्ते गृहे इत्यर्थः । आकाशशब्देन गमनप्रतिबन्धकभूप्रदेशानवछिन्नप्रदेशो लक्ष्यते । सप्तम्या च अवच्छेदकत्वं, धातुना निराधारगमनम् । तथा चोक्तविधभूप्रदेशानव-

च्छिन्नप्रदेशावच्छिन्ननिराधारगमनानुकूला कृतिः पक्षिनिष्ठेत्याहुः । वैयाकरणनव्या अप्राप्तिपूर्वकप्राप्तिरूपसंयोगसमवायैतद्भिन्नसंबन्धेन यदधिकरणं तद्वैषयिकं तत्रैव सप्तमीत्याहुः ।

वस्तुतस्तु मृगतृष्णाम्भसि स्नात इत्यादाविवारोपितोपश्लेषाधिकरणे सप्तमी । इको यणचीत्यादावौपश्लेषिकाधिकरणे सप्तमीति संहितायामिति-सूत्रस्थभाष्यमेवं संगच्छते । अन्यथा द्रव्ययोरेव संयोग इति नियमाद्गु-णयोर्मुख्योपश्लेषाभावाद्भाष्यमसंगतं स्यात् ।

इन्प्रकृतिक्तान्तकर्मणि सप्तमीविधायकात् 'क्तस्येन्विषयस्य कर्मण्युप-संख्यानम्' इत्यनुशासनादधीती व्याकरणे इत्यादौ सप्तमी, व्याकरणकर्म-काध्ययनकर्तेति बोधः । अत्र कृतपूर्वीवद्भावे क्तः अधीतमनेनेतीष्टादिभ्य-श्चेतीनिः । मासमधीती व्याकरणे इत्यादौ लक्ष्यानुरोधात्कालादिकर्मणि नेदं प्रवर्तते । कचित्त्विष्टापत्तिमाहुः ।

षष्ठ्यपवादसप्तमीविधायकेन ' साध्वसाधुप्रयोगे च ' इत्यनुशासनेन साधुः कृष्णो मातरि असाधुर्मातुले इत्यादौ सप्तमी, मातृसंबन्धि···
·······································। ············· भृत्या-भिन्नः शुभकर्मवानिति बोधे साधुशब्दस्य भृत्येन संबन्धाद्राजपदोत्तरं षष्ठी । भृत्यपदात्तत्तत्संबन्धी नञ्तरङ्गेन प्रथमा या वा (?) ।

धातुसमभिव्याहृतपदार्थनिष्ठफलेच्छानुकूलेच्छाविषयरूपनिमित्तस्य कर्मणा संयोगसमवायात्मकसंबन्धे तादृशनिमित्तवाचकात्सप्तमीविधाय-कात् ' निमित्तात्कर्मयोगे ' इत्यनुशासनात्—

चर्मणि द्वीपिनं हन्ति दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम् ।
केशेषु चमरीं हन्ति सीम्नि पुष्कलको हतः ॥

इत्यादौ सप्तमी । द्वीपिनिष्ठप्राणवियोगेच्छानुकूलेच्छाविषयचर्महे-तुका तदर्था वा क्रियेति बोधः । हेतुतृतीयायास्तादर्थ्यचतुर्थ्याश्च बाधि-केयम् ' मुक्ताफलायकरिणं रघुवीर हन्ति ' इत्यादौ क्रियार्थोपपदे-ति चतुर्थी । योगाभावे तु वेतनेन धान्यं लुनाति वेतनाय वेति प्रयोगः । वेतनहेतुकं तदर्थं वा धान्यकर्मकं लवनमिति बोधः ।

कर्तृकर्मणोः स्वनिष्ठक्रियाद्वारकेतरकर्तृकर्मनिष्ठक्रियालक्षकत्वे विव-क्षिते लक्षककर्तृकर्मवाचकात्सप्तमीविधायकात् ' यस्य च भावेन भावल-

क्षणम् ' इत्यनुशासनाद्गोषु दुह्यमानासु गत इत्यादौ कर्मणि ब्राह्मणेष्वधीयानेषु इत्यादौ कर्तरि सप्तमी। वर्तमानदोहनकर्मीभूतगोनिष्ठज्ञापकतानिरूपितज्ञाप्यतावद्गमनाश्रय इति बोधः । वर्तमानाध्ययनकर्तृभूतब्राह्मणनिष्ठज्ञापकतेत्यादिपूर्ववत् । दुग्धास्वित्यत्र वर्तमानध्वंसप्रतियोगिदोहनकर्मीभूतेत्यादि प्राग्वत्। धोक्ष्यमाणास्वित्यत्र विद्यमानप्रागभावप्रतियोगिदोहनकर्मीभूतेत्यादिप्राग्वत् । यत्र च लक्ष्यलक्ष्यणभावो न विवक्षितस्तत्र गावो दुह्यन्ते चैत्रो गत इत्येव प्रयोगः । विवाहे नान्दीमुखं कुर्यादित्यत्र विवाहपदेन तत्प्राक्कालो लक्ष्यते इत्यधिकरणे सप्तमी। राहूपरागे स्नायादित्यादौ राहूपरागादिपदेन तदाश्रयः काल उच्यते । गवां दोहे गत इत्यादौ निमित्तसप्तमीति व्यवहारोऽपि अधिकरणसप्तमीमादायैव। ननु निमित्ते सप्तमीविधानं नास्तीति (?) शयानेन चैत्रेण भुक्तमित्यत्र न, एककर्तृकत्वात्।

यत्तु व्युत्पत्तिवादे शयनभोजनक्रिययोः समानकालीनत्वेऽपि तत्र लट्प्रत्ययेनैव समभिव्याहाराद्भोजनादिसमानकालीनत्वं शयनक्रियाया बोध्यतेऽतो न सप्तमी , अन्यतस्तदनभिधान एव सप्तमीविधानादित्युक्तं तन्न, गोषु दुह्यमानास्वित्यादिमुख्योदाहरणस्य भवद्रीत्या भेदाभावात्।

क्रियार्हाणां क्रियाकर्तृत्वे विवक्षिते तथा क्रियानर्हाणां तदभावे विवक्षते तथा क्रियार्हाणां तदभावे क्रियानर्हाणां तस्मिन्विवक्षिते सति सप्तमीविधायकात् ' अर्हाणां कर्तृत्वेऽनर्हाणामकर्तृत्वे तद्वैपरीत्ये च ' इत्यनुशासनेन सत्सु तरत्सु असन्त आसते असत्सु तिष्ठत्सु सन्तस्तरन्ति, इत्यत्र कर्तृसमर्पकात्सप्तमी । इह प्रथमवाक्यद्वये औचित्यं व्यङ्ग्यं, सत्सु तिष्ठत्सु असन्तस्तरन्ति असत्सु तरत्सु सन्तस्तिष्ठन्ति इह तद्वयेऽनौचित्यं व्यङ्ग्यम् । औचित्यानौचित्यरूपव्यङ्ग्यव्यञ्जकभावसंबन्धे सप्तमी । अत एव न यस्य च भावेनेत्यनेन गतार्थता। अन्ये तु व्यर्थमिदमित्याहुः । कैयटादयस्तु लक्ष्यलक्षणभावाविवक्षायामिदमित्याहुः ।

षष्ठी चानादरे इत्यनेन अनादराधिक्ये भावलक्षणे षष्ठीसप्तम्यौ । रुदति रुदतो वा प्राव्राजीदित्यत्र अनादरविशिष्टं प्रव्रजनं धात्वर्थः। वैशिष्ट्यं च सामानाधिकरण्य-स्वोत्तरकालिकत्वाभ्याम्। रोदनतृपुत्रादिज्ञाप्यमनादरविशिष्टं व्रजनमिति बोधः ॥ स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैश्च इत्यनुशासनाद्गवां गोषु वा स्वामीत्यादौ

षष्ठीसप्तम्यौ । निरूपकतारूपः संबन्धो विभक्त्यर्थः । तथा च गोनिष्ठस्वत्वनिरूपितस्वामित्ववानिति बोधः । गवां गोषु वा प्रसूतः गा एवानुभवितुं जात इत्यर्थः । गवां गोषु वा दायाद इत्यत्र गोसंबन्धिदायकर्मकादानकर्तेति बोधः । दायमादत्तेऽसौ दायादः विभक्त्यर्थस्य समुदायसंबन्धेऽप्यवयवेन दायेनापि संबन्धः । तथा च गवाद्यात्मकस्यांशस्यादातेत्यर्थः । गवामश्वेषु च स्वामीति न प्रयोगः । उभयत्र समानविभक्तिकत्वनियमात् कृञ्चेति सूत्रे भाष्ये तथैव स्पष्टत्वात् ।

तदेकव्यापारतया सेवायामायुक्तकुशलपदयोर्योगे षष्ठीसप्तमीविधायकात् 'आयुक्तकुशलाभ्यां चासेवायाम्' इत्यनुशासनादायुक्तः कुशलोवा हरिपूजने हरिपूजनस्य वेत्यादौ षष्ठीसप्तम्यौ । हरिपूजनविषयकतात्पर्यवानिति बोधः । कौशलवानिति वा । विषयसप्तम्यां प्राप्तायां वचनम् ।

पदोपात्तजातिगुणक्रियासंज्ञाभिः पृथक्करणं निर्धारणं, प्रतियोगितावच्छेदकमनुष्यत्वगोत्वादेर्निर्धारणविषयीभूते ब्राह्मणादौ सत्त्वे प्रतियोगितावच्छेदकमनुष्यत्वादिविशिष्टवाचकात्षष्ठीसप्तमीविधायकात् 'यतश्च निर्धारणम्' इत्यनुशासनान्नृणां नृषु वा द्विजः श्रेष्ठः, गवां गोषु वा कृष्णा बहुक्षीरा, गच्छतां गच्छत्सु वा धावन् शीघ्रः, अमीषां छात्राणां देवदत्तः पटुरित्यादौ षष्ठीसप्तम्यौ । अत्र निर्धारणं विभक्त्यर्थः । तथा च श्रेष्ठाभिन्नः नरप्रतियोगिकनिर्धारणविषयो ब्राह्मणः इति बोधः । एवमन्यत्राप्यूह्यम् । नरस्य क्षत्रियः शूर इति स्यादिति चेदत्र केचित्—एकवचनभिन्नयोरेव षष्ठीसप्तम्योरुक्तनिर्धारणबोधकत्वव्युत्पत्तिस्वीकारः । अन्ये तु व्यक्तिपक्षे तादृशव्युत्पत्तिस्वीकारेऽपि जातिपक्षे तादृशप्रयोगे क्षत्यभावात् । अत एव 'द्वन्द्वः सामासिकस्य च' इति गीता संगच्छते । मिदचोऽन्त्यात्परः इति सौत्रप्रयोगश्च संगच्छते । भवदुक्तरीत्या त्वनयोरसाधुता युक्ता । ननु नराणां मध्ये क्षत्रियः शूरतम इत्यत्र मध्यशब्देनैव निर्धारणस्योक्तत्वात् षष्ठी न स्यात् इति चेत् सत्यं, नेयं निर्धारणषष्ठी किं तु मध्यशब्दयोगे संबन्धसामान्ये षष्ठी, सप्तमी त्वत्रासाधुरेवेति केचित् । अन्ये तु निर्धारणवाचिनो मध्ये इत्यव्ययस्य तदर्थकषष्ठ्या सह संभेदे हे चैत्रेत्यादाविवान्यतरवैयर्थ्यम् । एवं च नरेषु मध्ये इत्यपि साध्वेव । ननु द्रव्येषु घटो गन्धवानित्यपि स्यादिति चेन्न । प्रकृत्युपात्तद्रव्यैकदेशपृथिव्येकदेशत्वात् । इह च

साक्षात्तदेकदेशग्रहणात् । यद्वा विशेषस्येतरव्यावृत्तधर्मवत्त्वं निर्धारणं, तथा च क्षत्रियान्यनरत्वावच्छिन्नवृत्तिभेदप्रतियोगिशूरतमाभिन्नः क्षत्रिय इति बोधः ।

निर्धारणप्रतियोगितावच्छेदकमनुष्यत्वगोत्वादेर्निर्धारणविषयीभूते राक्षसादावसत्त्वरूपेऽत्यन्तभेदे पञ्चमीविधायकेन 'पञ्चमीविभक्ते' इत्यनुशासनेन माथुराः पाटलिपुत्रकेभ्यः आढ्यतरा इत्यत्र पञ्चमी, पाटलिपुत्रकावधिकनिर्धारणविषया माथुरा आढ्यतरा इति बोधः । अन्ये तु पाटलिपुत्रधनाधिकधनवन्तो माथुराः । एवं वैश्यशौर्याधिकशौर्यवन्तः क्षत्रिया इत्यादि बोधमाहुः ।

प्रतिपर्यनूनां प्रयोगाभावे साधुनिपुणयोर्योगेऽर्चायां गम्यमानायां संबन्धे सप्तमीविधायकात् ' साधुनिपुणाभ्यामर्चायां सप्तम्यप्रतेः' इत्यनुशासनान्मातरि साधुर्निपुणो वेत्यत्र सप्तमी । मातृसंबन्धिपूजनविषयककौशल्यवानिति बोधः ।

प्रकर्षेण सितः शुक्ल इति यौगिकार्थातिरिक्तरूढ्यासक्तवाचकप्रसितोत्सुकाभ्यां योगे विषयसप्तम्यर्थे पाक्षिकतृतीयाविधायकात् 'प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च' इत्यनुशासनात् प्रसित उत्सुको वा हरिणा हरौ वेत्यादौ तृतीयासप्तम्यौ । हरिविषयकसक्तियावानिति बोधः ।

नक्षत्रवाचिप्रकृतेः ' नक्षत्रेण युक्तः कालः ' इत्यण्प्रत्यये तस्य 'लुबविशेषे' इति लुपि कृते नक्षत्रयुक्तकालप्रतिपादकादधिकरणसप्तमीतृतीयाविधायकात् 'नक्षत्रे च लुपि' इत्यनुशासनात् 'मूलेनावाहयेद्देवीं श्रवणेन विसर्जयेत्' इत्यादावधिकरणे पाक्षिकतृतीयासप्तम्यौ । मूलनक्षत्रकालाधिकरणकं देवीकर्मकमावाहनमिति बोधः ।

शक्तिद्वयमध्ये यौ कालाध्वानौ ताभ्यामधिकरणे पाक्षिकसप्तमीपञ्चमीविधायकात् ' सप्तमीपञ्चम्यौ कारकमध्ये ' इत्यनुशासनादद्य भुक्त्वाऽयं द्व्यहे द्व्यहाद्वा भोक्ता इहस्थोऽयं क्रोशे क्रोशाद्वा लक्ष्यं विध्येदित्यादौ सप्तमीपञ्चम्यौ । स्वानन्तरदेशकालवृत्तित्वं विभक्त्यर्थः । तेनैतद्दिवसाधिकरणकभोजनोत्तरकालिकमेतद्दिवसानन्तरद्व्यहानन्तरवर्तियद्भोजनं तदाश्रय इत्यर्थः । एतद्देशाधिकरणकस्थित्याश्रयकर्तृकमेतद्देशानन्तरक्रोशानन्तरस्थितलक्ष्यकं व्यधनमिति बोधः ।

अधिकशब्दयोगेऽस्मान्मन्द इत्यादाविव ' पञ्चमी विभक्ते ' इत्यनेन

पञ्चम्यामेव प्राप्तायां ' तदस्मिन्नधिकम् ' इति, 'यस्मादधिकम्' इति च निर्देशात्सप्तमी पञ्चमी चेष्यते । लोके लोकाद्वाऽधिको हरिरित्यादौ प्रतियोगित्वरूपः संबन्धो विभक्त्यर्थः । लोकप्रतियोगिकाधिक्यवदभिन्नो हरिरिति बोधः ।

आधिक्यप्रतियोगिनि ऐश्वर्यप्रतियोगिन्यनुयोगिनि च कर्मप्रवचनीययोगे सप्तमीविधायकात् ' यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी ' इत्यनुशासनादुपपरार्धे हरेर्गुणाः, अधि रामे भूः, अधि भुवि रामः, इत्यादौ सप्तमी । प्रतियोगित्वानुयोगित्वरूपः संबन्धो विभक्त्यर्थः । परार्धप्रतियोगिकाधिक्यवदभिन्ना हरिसंबन्धिगुणाः, रामप्रतियोगिकस्वत्वाश्रया भूः, भूवृत्तिस्वत्वप्रतियोगी राम इति बोधः ॥

इति श्रीमन्मौनिकुलतिलकायमानगोविन्दभट्टात्मजरघुनाथभट्टसुतश्रीकृष्णभट्टविरचितो लघुविभक्त्यर्थनिर्णयः समाप्तः ॥

॥ शुभं भूयात् ॥

शाब्दबोधप्रकाशिका १२.

सेविता सर्वगीर्वाणैः सेवकाभीष्टदायिनी ।
भव्याय भवतां नित्यं भवताद्भवभामिनी ॥ १ ॥
नत्वा शिवपदं रामकिशोरेण विरच्यते ।
सुबोधाऽबुधबोधार्थं शाब्दबोधप्रकाशिका ॥ २ ॥

शाब्दबोधे तु सर्वत्र क्रियामुख्यविशेष्यता ।
दोषग्रस्ताऽप्रमाणा च प्रथमान्तार्थमुख्यता ॥ १ ॥

चैत्रो ग्रामं गच्छतीत्यादौ ग्रामाभिन्नाश्रयनिष्ठसंयोगानुकूलश्चैत्रकर्तृको. वर्तमानकालवृत्तिर्व्यापार इत्याद्याकारकः क्रियामुख्यविशेष्यकः सर्वत्र शाब्दबोधः ।

ननु ग्रामनिष्ठसंयोगानुकूलव्यापारानुकूलवर्तमानकृतिमांश्चैत्र इत्याद्याकारको नैयायिकाभ्युपगतः प्रथमान्तार्थमुख्यविशेष्यक एव शाब्दबोधः कुतो नाङ्गीक्रियत, इत्याह—दोषग्रस्तेति । शाब्दबोधस्य प्रथमान्तार्थमुख्यविशेष्यकत्वे पश्य मृगो धावतीत्यत्र धावनस्य दर्शनकर्मत्वं नोपपद्यते । न च तत्र प्रथमान्तार्थस्य मृगस्यैव दृशिक्रियाकर्मत्वं, त्वमित्यध्याहृतप्रथमान्तपदार्थस्य तु मुख्यविशेष्यत्वमिति वाच्यम् । मृगकर्तृकोत्कटधावनक्रियाविशेष्यस्यैव दृशिक्रियाकर्मत्वेन प्रतिपिपादयिषितत्वात् । किंच धावनक्रियाविशिष्टमृगस्य दृशिक्रियाकर्मत्वे विवक्षितलाभेऽपि मृगपदाद्द्वितीयापत्तिर्दुर्वारा । धावनक्रियायास्तत्कर्मत्वे तु न द्वितीयापत्तिः । धातुतिङन्तयोः प्रातिपदिकत्वाभावात् । कर्मत्वं तु संसर्गतया भासते । न च शाब्दबोधस्य प्रथमान्तार्थमुख्यविशेष्यकत्वपक्षेऽपि धावनक्रियाविशिष्टस्य मृगस्य दृशिक्रियायां कर्मतासंबन्धेनान्वयान्न मृगपदाद्द्वितीयापत्तिः, प्रातिपदिकार्थविशेष्यत्वेन कर्मत्वादिविवक्षायामेव द्वितीयादिविधानात्, अत एवार्घो नम इत्यादावर्घादिपदार्थस्य नमःपदार्थत्यागे कर्मतासंबन्धेनान्वयादर्घादिपदात्प्रथमैवेति वाच्यम् । निपातातिरिक्तप्रातिपदिकार्थस्य धात्वर्थेऽभेदातिरिक्तसंबन्धेन साक्षादन्वयस्याव्युत्पन्नत्वात् । अन्यथा चैत्रो ग्रामो गच्छति, चैत्रस्तण्डुलः पचतीत्यादिरपि प्रयोग आपद्येत । अत्रापि ग्रामतण्डुलादेर्गमनपचनादौ कर्म-

तासंबन्धेनान्वयसंभवात्। नापि—धावनानुकूलकृतिविशिष्टमृगरूपवाक्यार्थस्यैव दृशिक्रियाकर्मत्वं, वाक्यस्य तु प्रातिपदिकत्वाभावान्न द्वितीयापत्तिः, कर्मत्वं तु संसर्गतया भासते—इति वाच्यम्। नीलो घटः पश्यतीत्यादिप्रयोगविरहेण वाक्यार्थस्यापि धात्वर्थे कर्मत्वादिसंसर्गेणान्वयस्याव्युत्पन्नत्वात्। "श्रुत्वा ममैतन्माहात्म्यं तथा चोत्पत्तयः शुभाः" इति त्वार्षम्। नापि तमित्यध्याहाराददोष इति वाच्यम्। वाक्यभेदापत्तेः।

ननु भवन्मतेऽपि 'दृश्यन्ते मृगा धावन्ति, मृगी धावति मारय, अश्वो गच्छत्यानय' इत्यादावध्याहारस्यावश्यत्वाद्वाक्यभेदो दुष्परिहरः। किं च तिङर्थविशेष्यतापन्नातिरिक्तनिपातेतरप्रातिपदिकार्थस्यैव धात्वर्थेऽभेदातिरिक्तसंबन्धेनान्वयस्याव्युत्पन्नत्वमभ्युपगन्तव्यम्। तेन पश्य मृगो धावतीत्यादौ तिङर्थविशेष्यतापन्नस्य मृगादिपदार्थस्य कर्मतासंबन्धेन दर्शनादिक्रियायामन्वये न किमपि बाधकमिति। एवं पश्य मृगो धावति मारय, अश्वो गच्छत्यानय इत्यादौ सर्वत्रैकवाक्यत्वमभ्युपपद्यत इतिशाब्दबोधस्य प्रथमान्तार्थमुख्यविशेष्यकत्वे न कोऽपि दोष इत्यभिप्रायेणाह—अप्रमाणा चेति। शाब्दबोधस्य प्रथमान्तार्थमुख्यविशेष्यकत्वं निर्दोषमपि प्रमाणशून्यम्। तस्य क्रियामुख्यविशेष्यकत्वे तु 'भावप्रधानमाख्यातम्' इति यास्कोक्तं 'क्रियाप्रधानमाख्यातम्' इतिरूपसूत्रस्थभाष्यं च प्रमाणमिति। भावः क्रिया, आख्यातं तिङन्तम्। भावकालकारकसंख्याश्चत्वारोऽर्था आख्यातस्य, तत्र भावः प्रधानमिति निरुक्तभाष्यम्। आख्यातस्य क्रियाप्रधानत्वं शाब्दबोधस्य क्रियामुख्यविशेष्यकत्व एवोपपद्यते न तु प्रथमान्तार्थस्य मुख्यविशेष्यत्वे। नच पाचकादिकृदन्तवत् पचतीत्याद्याख्यातस्यापि साधनप्रधानत्वमेवास्तु। चैत्रो ग्रामं गच्छति, चैत्रस्तण्डुलं पचतीत्यादौ शाब्दबोधस्य च प्रथमान्तार्थमुख्यविशेष्यकत्वमेवास्तु, किमाख्यातस्य क्रियाप्रधानत्वस्वीकारेणेति वाच्यम्। तथा सति पचन् पठति, पाचको गायति, पचता पठ्यते, पाचकेन गीयते, पक्तवता भुज्यते, पचतो धनं, पाचकस्य गृहं, पक्तवतो गृहमित्यादिवत् पचति पठति, पचति गायति, पचति पठ्यते, पचति गीयते, अपाक्षीद्भुज्यते,पचति धनं, पचति गृहम् अपाक्षीद्गृहमित्यादीनामपि प्रयोगाणां तत्तदर्थे प्रामाण्यप्रसङ्गात्। तथा चोक्तम्—

यथा कृदन्तवाक्येऽस्य साधनस्य क्रियान्तरैः।
संबन्धः स्यात्तथेहापि नाख्याते स कथं भवेत्॥

पचतो धनमित्येवं तिङापि स्याद्धनान्वयः ।
क्रियायास्तु विशेष्यत्वे सर्वमेतददूषणम् ॥ इति

किं च भगवद्भाष्यकारदर्शितयुक्तेरप्याख्यातस्य क्रियाप्रधानत्वमवगम्यते । तथाहि—कथं ज्ञायते क्रियाप्रधानमाख्यातं द्रव्यप्रधानं नामेति । यत् क्रियां पृष्टस्तिङाचष्टे–किं देवदत्तः करोति ? पचतीति । द्रव्यं पृष्टः कृताचष्टे । कतरो देवदत्तः यः कारको हारक इति रूपस्सूत्रे भाष्ये उक्तम् । किं देवदत्तः करोतीति द्रव्यं पृष्टः करोतिश्च क्रियासामान्यवचनः, तत्र विशेषपरिज्ञानाय किंशब्दः क्रियाविशेषणं प्रवर्तते । क्रियाविशेषणत्वाच्च किमित्येतद्द्वितीयान्तं नपुंसकं च । प्रकरणादिवशाच्च क्रियाप्रश्नावगतिः । गुणद्रव्यविशेषस्यापि प्रश्नस्य संभवात् । वायकः किं शुक्लं वस्त्रं करोत्यथ कृष्णं, तथा किं शाटकं करोत्यथ प्रावारकमिति । द्रव्यं पृष्ट इति । यद्यपि यः पचतीति तिङन्तेनाप्युत्तरं भवति तथाऽपि सर्वनाम्ना परामृश्य पाकक्रियायाः यः कर्ता स देवदत्त इत्यभिधानात् केवलेनाख्यातेनोत्तरस्यादानादाख्यातस्य साधनप्रधानत्वाप्रसङ्गः । पदान्तरेण हि द्रव्योपलक्षणाय गुणभावं क्रिया नीयते इति कैयटः । अथाख्यातस्य क्रियाप्रधानत्वे तदधीते तद्वेदेत्यादिसूत्रविहिताणादिप्रत्ययान्तवैयाकरणादिपदस्य व्याकरणकर्मकाध्ययनाद्यर्थकत्वमेव स्यान्न तु तदाश्रयार्थकत्वमिति । तथा च सति वैयाकरणः पुरुष इत्यादौ वैयाकरणादिपदार्थस्य व्याकरणकर्मकाध्ययनादेराश्रयतासंबन्धेनैव पुरुषादिपदार्थान्वयो वाच्यः । स च न संभवति निपातातिरिक्तप्रातिपदिकार्थयोर्भेदेन साक्षादन्वयस्याव्युत्पन्नत्वात् । अन्यथा पाकश्चैत्रो व्याकरणाध्ययनं पुरुष इत्यादिरपि प्रयोग आपद्येत । तत्राप्याश्रयतासंबन्धेन पाकव्याकरणाध्ययनादिपदार्थस्य चैत्रपुरुषादावन्वयसंभवादिति चेदुच्यते । अधीत इत्यादौ लौकिकप्रयोगे क्रियाप्रधानत्वेऽपि सौत्रे साधनमेव प्रधानत्वेन विवक्षितम् । वैयाकरणादिपदस्य व्याकरणकर्मकाध्ययनादिकर्तर्येव शिष्टैः प्रयुक्तत्वात् । फलानुरोधाच्च कल्पनाया इति । तदधीत इतिसूत्रे शब्देन्दुशेखरकारेणाप्यधीत इत्यादीनां लौकिकप्रयोगे क्रियाप्रधानत्वेऽन्यत्र कारकप्रधानतेत्युक्तम् । एतदभिप्रायेणैव तत्र सूत्रे मनोरमाकारेणापि द्वितीयान्तादध्येतरि वेदितरि च प्रत्ययः स्यादिति व्याख्यातम् । तद्धितार्थस्य क्रियात्वाभावेऽप्यलौकिके द्वितीयान्तात्प्रत्ययवि-

धानसामर्थ्यादेव द्वितीया । एवं तत्र भव इत्यादिविषये सप्तम्याद्यपीति शेखरकारः । एवं चाख्यातस्य क्रियाप्रधानत्वे न काप्यनुपपत्तिरिति । किंच शाब्दबोधस्य क्रियामुख्यविशेष्यकत्वमङ्गीकुर्वतां भवति पचति, भवति पक्ष्यति, भवत्यपाक्षीदित्येतद्विषयकं पचादयः क्रिया भवतिक्रियायाः कर्त्र्यो भन्वतीति भूवादिसूत्रभाष्यमप्यनुकूलम् । नह्येतद्भाष्यबोधितमुक्तस्थलेषु पचादिक्रियाणां भवतिक्रियाकर्तृत्वं शाब्दबोधस्य प्रथमान्तार्थमुख्यविशेष्यकत्वमूरीकुर्वतां मत उपपद्यते । न च तन्मतेऽपि भवतिपचतीत्यादिषु भवतिपदलभ्यस्य भवनकर्तृत्वस्याश्रयतासंबन्धेन, भवनकर्तुर्वाऽभेदसंबन्धेन, पचादिक्रियास्वन्वयात्पचादिक्रियाणां भवतिक्रियाकर्तृत्वमुपपद्यत इति वाच्यम् । तन्मते धात्वर्थविशेष्यतापन्नाख्यातार्थस्य प्रथमान्तपदोपस्थाप्य एवान्वयाद्भावनायाः साधनस्य वा विशेष्यत्वेनान्वययोग्यः कर्मत्वाद्यनवरुद्धः प्रथमान्तपदोपस्थाप्य इति तेषां सिद्धान्ताद्धात्वर्थविशेष्याख्यातार्थविशेष्यतापन्नस्य पदार्थान्तरे विशेषणत्वेनान्वयस्याव्युत्पन्नत्वाद्भवतिपदार्थविशेष्यतापन्नपचादिक्रियाणां तिङर्थेऽन्वयानुपपत्तिश्च । भवति पचतीत्यादिषु प्रतीयमानभवनं भवतेरर्थस्तेन भवति पक्ष्यति भवत्यपाक्षीदित्यत्र भविष्यदतीतपाकभवनस्य वर्तमानत्वाभावेऽपि न क्षतिस्तत्प्रतीतिविषयताया वर्तमानत्वस्य सत्त्वात् । एतद्भाष्यप्रमाणबलतः कालाविवक्षायामपि क्वचिल्लट् भवतीत्यप्याहुः । एवं च तिङन्तं तिङन्तस्य विशेषणं न भवतीत्यपास्तमुक्तभाष्येण तिङन्तस्य विशेषणताया बोधितत्वात् । वृद्धैरप्युक्तम्—

सुबन्तं हि यथानेकं तिङन्तस्य विशेषणम् ।
तथा तिङन्तमप्याहुस्तिङन्तस्य विशेषणम् ॥

इति उक्तभाष्यव्याख्याने कैयटोपाध्यायेनाप्युक्तम् । नन्वन्यत्रोक्तं तिङभिहितो भावः क्रियया समवायं न गच्छति, नहि भवति पचतिपठतीति । ततश्च तेनैतद्विरुध्येत । अत्राहुः, कर्तृकर्मभावेन क्रिया आख्यातक्रियया संबध्यत एव । भवति पचति, पश्य मृगो धावतीति । करणादिभावेन तु न संबध्यते तथा प्रयोगादर्शनादिति । अन्यत्र सार्वधातुके यगित्येतत्सूत्रभाष्ये । समवायं संबन्धं न गच्छति न प्राप्नोति । आकाङ्क्षाविरहात् क्रियान्तरस्य विशेषणं न भवतीत्यर्थः। पचति पठतीति सामानाधिकरण्यसंबन्धेनान्वयाभिप्रायेण । कर्तृकर्मभावेनेति । आख्यातक्रि-

याया: कर्तृकर्मभावेन क्रियान्तरेणान्वयं प्रत्याकाङ्क्षा स्वीक्रियते, फलानुरोधेन तस्याः कल्पनीयत्वादित्याशयः । ननु क्रियायाः साध्यरूपत्वात्कथं क्रियान्तरं प्रति तस्याः कर्तृकर्मभावः सिद्धं हि कारकं भवतीति नाशङ्कनीयम्, एकं प्रति साध्यस्याप्यर्थस्यापरं प्रति साधनत्वसंभवात् ।

सार्वधातुके यगितिसूत्रे क्रिया क्रियासमवायं न गच्छति पचति पठतीत्येतद्भाष्यव्याचक्षाणेन कैयटोपाध्यायेनाप्येवमुक्ते तदर्थप्रतिपादिका हरिकारिकाऽपि दर्शिता तथाहि—क्रिया क्रिययेति । ननु भवति पचति, पश्य मृगो धावतीति कर्तृकर्मभावेन क्रिया क्रियया संबध्यत एव । एवं तर्हि करणादिरूपेण समवायं न गच्छतीति विवक्षितम् । ननु साध्यत्वात्क्रियायाः कथं क्रियान्तरं प्रति कर्तृकर्मभावः विषयभेदादेकस्याप्यर्थस्य साध्यसाधनभावसंबन्धसंभवाददोषः । तदुक्तं हरिणा—

यत्र यं प्रति साध्यत्वमसिद्धा तं प्रति क्रिया ।
सिद्धा तु यस्मिन्साध्यत्वं न तमेव पुनः प्रति ॥
मृगो धावति पश्येति साध्यसाधनरूपता ।
तथा विषयभेदेन सरणस्योपपद्यते ॥ इति ।

भवति पचतीति एककर्तृकवर्तमानकालवृत्तिपाककर्तृकभवनमित्यन्वयबोधः । पश्य मृगो धावतीति मृगाभिन्नैककर्तृकवर्तमानकालवृत्तिधावनकर्मकं मदिच्छाविषयभूतं त्वत्कर्तृकं दर्शनमित्यन्वयबोधः । करणादीति । एतेन तिङन्तस्य तिङन्तविशेषणत्वाभ्युपगमे पुत्रजन्मना पिता हृष्यति, तन्तुसंयोगात्पटो जायते इत्यादिवत् पुत्रो जायते पिता हृष्यति, तन्तवः संयुज्यन्ते पटो जायते, इत्यादेरप्येकवाक्यत्वमापद्येत, अत्रापि करणत्वादिसंबन्धेन तिङन्तार्थस्यापरतिङन्तार्थेऽन्वयसंभवादित्यपास्तम् । तिङन्तक्रियायास्तिङर्थेऽभेदसंबन्धेन धात्वर्थे तु कर्मतासंबन्धेनैवान्वयस्य व्युत्पन्नत्वात् । एवं च—

असत्त्वभूतो भावश्च तिङ्पदैरभिधीयते ।

इति वाक्यपदीयोक्तं तिङन्तक्रियाया असत्त्वभूतत्वं करणादिभावेन क्रियान्तराानन्वयित्वरूपं लिङ्गसंख्यानन्वयित्वरूपं वा बोध्यम् । किं च चैत्रो ग्रामं गच्छतीत्यादिशाब्दबोधस्य शाब्दबोधत्वेनापि क्रियामुख्यविशेष्यकत्वसिद्धिः । तथाहि–चैत्रो ग्रामं गच्छतीति शाब्दबोधः

क्रियामुख्यविशेष्यकः, शाब्दबोधत्वात्, चैत्रेण सुप्यत इति शाब्दबोधवत्। प्रथमान्तार्थमुख्यविशेष्यकत्वं प्रति तु न शाब्दबोधत्वं साधकम्, गच्छति पचति चैत्रेण सुप्यत इत्यादिप्रथमान्तासमभिव्याहारस्थलीयशाब्दबोधे व्यभिचारादिति।

ननु भवन्मतेऽपि घटोऽयमित्यादिक्रियापदासमभिव्याहारस्थलीयशाब्दबोधे व्यभिचार इत्याह—

यत्र क्रियापदं नास्ति प्रथमान्तं च वर्तते।
तत्रापि लट्परस्यास्तेरध्याहाराददूषणम्॥ २॥

यत्र घटोऽयमित्यादौ क्रियापदं नास्ति प्रथमान्तपदं च वर्तते तत्रास्ति लट्परमध्याहृत्य शाब्दबोधस्य क्रियामुख्यविशेष्यकत्वमुपपादनीयम्। न च तत्र विनाऽपि क्रियापदं प्रथमान्तपदादेव शाब्दबोधोदयसंभवात् क्रियापदाध्याहारे प्रमाणाभाव इति वाच्यम्। तिङ्समानाधिकरणे प्रथमेति वार्तिकेन प्रातिपदिकस्य तिङ्सामानाधिकरण्य एव ततः प्रथमाविधानात्तत्र क्रियाध्याहारं विना प्रथमाया एवानुपपत्तेः। अत एव वार्तिककारेणाप्युक्तम्—अस्तिर्भवन्तीपरः प्रथमपुरुषेऽप्रयुज्यमानोऽप्यस्तीति। भवन्तीपर इति। भवन्तीशब्दो "भुवो झिच्" इति औणादिकसूत्रेण सिद्धो वर्तमानकालार्थकोऽपि तद्वाचकत्वलक्षणया लट्परः। तेन प्रथमपुरुषे लडन्तास्तिधातुरप्रयुज्यमानक्रिये वाक्ये नित्यमध्याह्रियत इति कात्यायनवाक्यार्थः। सूत्रे भुव इति वदतेर्वतेश्चोपलक्षणम्। तेन वदतिर्वतिरित्यपि सिद्धम्। झिच्प्रत्ययान्ताः सर्वे स्त्रियां द्वयोर्वा, किंवन्दती जनश्रुतिरिति दर्शनात्। इतिपदवाक्यरत्नाकरः। स्त्रियां द्वयोर्वेति मतभेदेन बोध्यम्। अनभिहित इतिसूत्रे कैयटोपाध्यायोऽपि भवन्तीपर इति लट्पर इत्यर्थ इति व्याचख्यौ। प्रथमपुरुष इति प्रायिकम्। त्वं वक्ता अहं श्रोतेत्यादौ प्रथमोपपत्त्यर्थं मध्यमोत्तमपुरुषयोरपि लट्परस्यास्तेरध्याहारस्यावश्यकत्वात्। त्रयः काला इत्यत्र त्रयाणां कालानां सत्ताया वर्तमानत्वाभावेन लट्परस्यास्तेरध्याहारासंभवेऽपि तत्र प्रतीयन्त इति क्रियापदमध्याहृत्य प्रातिपदिकस्य तिङ्सामानाधिकरण्यमुपपादनीयम्। न चैवमस्तिर्भवन्तीपरः प्रथमपुरुषेऽप्रयुज्यमानोऽप्यस्तीति वार्तिककारोक्तनियमभङ्गप्रसङ्ग इति वाच्यम्। तत्रास्तेरुपलक्षणत्वात्। तिङ्समानाधिकरणे प्रथमेत्यनुरोधेन यत्र क्रियापदं नास्ति तत्र प्रथमोपप-

स्त्यर्थं यथासंभवं क्रियाध्याहारः कर्तव्य इति वार्तिककाराशयात् । अथवा सन्तीत्येवाध्याहार्यं कालस्त्वविवक्षितः । वर्तमाने लडित्यत्र वर्तमानपदस्य भूतभविष्यद्भिन्नपरत्वाल्लटो नानुपपत्तिः । प्रतीयमानभवनं वाऽस्तेरर्थः । अयं घटो नीलो न, चन्द्र इव मुखमित्यादौ तु नीलादिपदं नीलभिन्नपरम् । चन्द्रादिपदं च चन्द्रादिसदृशपरम् । नञिवौ तु द्योतकौ, निपातत्वादुपसर्गवदिति । नीलचन्द्रादिपदानामपि तत्र तिङ्सामानाधिकरण्यं सूपपादमेव । न चोपसर्गाणामेव द्योतकत्वे प्रमाणाभावाद्दृष्टान्तासिद्धिरिति वाच्यम्, सुखमनुभवति सुखमनुभूयते गुरुमुपास्ते गुरुरुपास्यते इत्यादौ कर्तरि कर्मणि च लकारोपपत्त्यर्थं धातोस्तत्तदर्थे वृत्तेरावश्यकत्वेनोपसर्गाणां द्योतकताया एव युक्तत्वात् । न च तत्रानुभूप्रभृतिसमुदायस्यैवानुभवाद्यर्थवाचकत्वं धातुत्वं च । तथा च सुखमनुभवति चैत्र इत्यादौ चैत्रादेर्धात्वर्थव्यापाराश्रयत्वेन कर्तृत्वात्सुखमनुभूयत इत्यादौ च सुखादेर्धात्वर्थव्याप्यत्वेन कर्मत्वात्कर्तरि कर्मणि च लकार उपपद्यते इति न भूप्रभृतिधातोस्तदर्थपरत्वमङ्गीकृत्योपसर्गस्य द्योतकत्वमङ्गीक्रियते इति वाच्यं, गौरवात् । भूवादयो धातव इत्येतेन भ्वादिगणपठितानामेव धातुसंज्ञाविधानात् अनुभूप्रभृतीनां गणे पाठाभावेन धातुत्वासंभवाच्च । न च बहुलमेतन्निदर्शनमित्यस्य दशगणीपाठो बहुलमिति व्याख्यानपक्षे चुलुम्पादिवदपठितानामप्यनुभूप्रभृतीनां गणे पाठमङ्गीकृत्य धातुत्वमङ्गीकार्यमिति वाच्यम् । अन्वभवदनुबुभूषतीत्यादावड्द्विर्वचनव्यवस्थानुपपत्तेरनुबभूवेत्यादौ धातोरनेकाच्त्वेनाम्प्रत्ययप्रसङ्गाच्च । तस्मात्तत्र तद्धातोरेव लक्षणया तत्तदर्थपरत्वमुपसर्गाणां तु द्योतकत्वमिति सिद्धम् । अत एव त्रिलोचनदासेनापि कातन्त्रवृत्तिपञ्जिकायां देवदेवं प्रणम्यादाविति श्लोकव्याख्याने प्रणम्येति प्रशब्देन प्रकर्षार्थो द्योत्यत इत्युक्तम् । तत्र नमधातुरेव लक्षणया प्रकृष्टनमस्कारपरः प्रोपसर्गस्तु तात्पर्यग्राहक इति तदाशयः । इत्थं चोपसर्गाणां द्योतकत्वे सिद्धे तद्दृष्ट्याऽन्येषामपि निपातानां द्योतकत्वमेव न तु वाचकत्वमिति सिद्धम् । अत एव भट्टोजिभट्टेनापि शब्दकौस्तुभे अथ शब्दानुशासनमित्यत्राथशब्दः प्रारम्भस्य द्योतको न तु वाचको निपातत्वादुपसर्गवदित्युक्तम् । तत्र शब्दानुशासनपदमेव लक्षणया शब्दानुशासनप्रारम्भपरमथशब्दस्तु तात्पर्यग्राहक इति तदाशयः । आरोपितो ब्राह्मणोऽब्राह्मण इत्यादौ नञ्समासे उत्तरपदार्थप्रधानत्वं च पूर्वपदस्य नञ्निपातस्य द्योत्यार्थापेक्षया

बोध्यः । तेनोत्तरपदार्थप्रधानः समासस्तत्पुरुष इति तत्पुरुषलक्षणस्य न तत्राव्याप्तिरिति । न च निपातानां द्योतकत्वे तेषामर्थवत्त्वाभावेन प्रातिपदिकत्वाभावात्तेभ्यः सुबुत्पत्तिर्न स्यात् । ततश्च हरो हरिश्च ते सेव्या उमोमेशश्च मे गतिरित्यादौ चप्रभृतिनिपातस्य पदत्वाभावेन तदुत्तरस्य युष्मदस्मदोः पदस्य तेमेप्रभृत्या..............................(?)

चतुर्विधे पदे चात्र द्विविधस्यार्थनिर्णयः ।
क्रियते संशयोत्पत्तेर्नोपसर्गनिपातयोः ॥
तयोरर्थाभिधाने हि व्यापारो नैव विद्यते ।
यदर्थद्योतकौ तौ तु वाचकः स विचार्यते ॥ इति ।
उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते ।
प्रहाराहारसंहारविहारपरिहारवत् ॥

इति वृद्धोक्तावुपसर्गपदं निपातस्योपलक्षणम् । धातुपदं पदान्तरस्येति बोध्यमिति कोण्डभट्टः ।

चतुर्विधे इति । तिङन्तसुबन्तोपसर्गनिपातरूपे । नोपसर्गनिपातयोरिति । अत्रोपसर्गस्य पृथगुपादानं गोबलीवर्दन्यायेन । व्यापारो वृत्तिः सा च शक्तिलक्षणान्यतररूपा । तत्र शक्तिरस्माच्छब्दादयमर्थो बोद्धव्य इतीश्वरेच्छेति प्राचीननैयायिकाः । नव्यनैयायिकास्तु अस्माच्छब्दादयमर्थो बोद्धव्य इतीच्छा शक्तिर्नत्वीश्वरेच्छा । तेनाधुनिकसंकेतशालिनां देवदत्तादिसंज्ञाशब्दानां तत्तद्व्यक्तिविशेषे गुणवृद्ध्यादिशब्दानां च तत्तद्वर्णविशेषे शक्तिरस्त्येवेत्याहुः ।

नागेशभट्टमतानुयायिनस्तु शक्तेरिच्छात्मकत्वे अयं शब्दोऽस्मिन्नर्थे शक्त इति व्यवहारानुपपत्तिः शब्दस्येच्छाश्रयत्वाभावात् । तस्माच्छक्तिः पदपदार्थयोः संबन्धविशेषः । स च वाच्यवाचकभावरूपः । तथा चोक्तं संकेतस्तु पदपदार्थयोरितरेतराध्यासरूपः स्मृत्यात्मकः । योऽयं शब्दः सोऽर्थो योऽर्थः स शब्द इति । स्मृत्यात्मक इत्यनेन ज्ञातस्यैव संकेतस्य शक्तिबोधकत्वं दर्शितम् । संकेतग्रहप्रकारमाह न्यायवाचस्पत्ये—सर्गादिभुवां महर्षिदेवतानामीश्वरेण साक्षादेव कृतः संकेतस्तद्व्यवहाराच्चास्मदादीनामपि सुग्रहस्तत्संकेत इति । सुग्रह इति । शोभनो ग्रहो यस्येति सुग्रहो नतु सुखेन गृह्यत इति सुग्रहः, खलर्थयोगे षष्ठ्यप्राप्तेः । तादात्म्यं च तदभिन्नत्वेन व्यवहार्यत्वं, तस्य च तादात्म्यस्य निरूपकत्वेन विवक्षितोऽर्थः

शक्यः, आश्रयत्वेन विवक्षितः शब्दः शक्त इत्युच्यते । शब्दार्थयोस्तादात्म्यादेव श्लोकमशृणोदर्थं शृणोति अर्थं वदतीत्यादिव्यवहारः, ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म, रामेति द्व्यक्षरं नाम मानभङ्गः पिनाकिनः, सुरथो नाम राजाऽभूत्, शब्दानुशासनं नाम शास्त्रं, वृद्धिरादैच्, इत्यादौ सामानाधिकरण्येन प्रयोगश्चोपपद्यते । न च शब्दार्थयोस्तादात्म्यस्वीकारे मधुशब्दोच्चारणे मुखे माधुर्यरसास्वादापत्तिर्वह्निशब्दोच्चारणे च मुखे दाहापत्तिरिति वाच्यम् । अभेदस्याध्यस्तत्वाद्वस्तुतो भेदस्य सत्त्वेन तादृशापत्तिविरहादित्याहुः ।

नैयायिकास्त्वयं शब्दोऽस्मिन्नर्थे शक्त इत्यत्र स्वजन्यबोधविषयत्वप्रकारकेच्छार्थकशकधातूत्तरविहितक्तप्रत्ययस्य निरूपकतासंबन्धेनाश्रयत्वरूपकर्तृत्वविशिष्टबोधकत्वाददोषः । शब्दार्थयोरितरेतराध्यासमङ्गीकृत्य तन्मूलकस्य तत्तदर्थाभिन्नत्वेन व्यवहार्यतारूपस्य तत्तच्छब्दनिष्ठतत्तदर्थतादात्म्यस्य तत्तच्छब्दशक्तिग्राहकत्वकल्पनं तु सति सदध्वनि कदध्वावलम्बनमिव न रोचते सद्भ्यः । श्रावणबोधस्येव शाब्दबोधस्यापि शृणोत्यर्थत्वान्नार्थं शृणोतीति प्रयोगानुपपत्तिः । एवं च आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्य इति श्रुतावप्यात्मनः श्रोतव्यतोपपद्यते । अर्थं वदतीत्यस्य तु शब्देन प्रतिपादयतीत्यर्थः । ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म इत्यत्र उपस्थितस्वरूपशक्तस्येतिशब्दस्य स्वरूपप्रतिपाद्ये लक्षणा । तदेकदेशे च स्वरूपे ओमित्यस्याभेदेनान्वयः । तेनैव संबन्धेन एकाक्षरपदार्थस्यापि तत्रान्वय इति । तथा च एकाक्षराभिन्नस्वरूपप्रतिपाद्यं ब्रह्मेत्यन्वयबोधः । न चापशुः पशुरद्रव्यं घट इत्यादिप्रयोगविरहेण पदार्थैकदेशे पदार्थान्तरस्यान्वयस्याव्युत्पन्नत्वादत्र पदार्थैकदेशे स्वरूपे ओमित्यस्य एकाक्षरपदार्थस्य चान्वयो न संभवतीति वाच्यम् । घटादन्य इत्यादौ अन्यपदार्थैकदेशे भेदे पञ्चम्यर्थप्रतियोगितायाः अन्वयदर्शनात् व्युत्पत्तिवैचित्र्येण पदार्थैकदेशेऽपि पदार्थान्तरान्वयस्य क्वचिदभ्युपगमात् । अत एव गभीरायां नद्यां घोष इत्यत्र नदीपदलक्ष्यार्थस्य नदीतीरस्यैकदेशे नद्यां गभीरापदार्थस्यान्वय इति । यदि च तत्र नदीपदस्य गभीरनदीतीरे लक्षणा, गभीरापदं तु तात्पर्यग्राहकमित्युच्यते, तदात्रापि इतिशब्दस्य ॐस्वरूपैकाक्षरप्रतिपाद्ये लक्षणा ओंपदमेकाक्षरपदं च तात्पर्यग्राहकमिति । एवमुत्तरत्रापि बोध्यम् ।

अथवा एकाक्षरपदस्यैकाक्षरप्रतिपाद्ये लक्षणा । तदेकदेशे च एकाक्षरे ओमित्यस्याभेदेनान्वयः । वस्तुतस्तु ब्रह्मपदस्य ब्रह्मप्रतिपादके लक्षणेत्यदोषः । रामेतिद्व्यक्षरं नाम मानभङ्गः पिनाकिन इत्यत्र नामपदस्य नामप्रतिपाद्ये लक्षणा तदेकदेशे च नाम्नि द्व्यक्षरपदार्थस्य रामेतीत्यस्य चाभेदेनान्वयः । तथा च रामस्वरूपद्व्यक्षराभिन्ननामप्रतिपाद्यः पिनाकिनो मानभङ्ग इत्यन्वयबोधः । ननु नामशब्दस्य लक्षणया नामप्रतिपाद्यार्थकत्वे मानभङ्गशब्दसमानाधिकरणत्वात्तस्य पुल्लिङ्गत्वं कथं न स्यात् । समानाधिकरणविशेषणस्य विशेष्यसमानलिङ्गत्वनियमात् । न चानियतलिङ्गसमानाधिकरणविशेषणस्यैव विशेष्यसमानलिङ्गत्वनियमः । कथमन्यथा वेदाः प्रमाणं शब्दः प्रमाणमित्यत्र प्रमाणशब्दस्य न पुंलिङ्गत्वमिति । उक्तं च रत्नमालायाम्

विशेषणे समानार्थे विशेष्यस्य विभक्तयः ।
जहल्लिङ्गे तु तल्लिङ्गं संख्याऽप्युत्सर्गतस्तथा ॥

इत्यत्र सूत्रे पुरुषोत्तमविद्यावागीशेन—अजहल्लिङ्गे तु न विशेष्यलिङ्गं यथा द्रव्यं घटो व्यक्तिर्जात्याश्रयः स्त्री रत्नं विद्या धनं प्रमाणं शब्द इत्यादीति । कातन्त्रपरिशिष्टकारेणापि विशेष्यवदेकाधिकरणस्य प्रायेणेत्यत्र सूत्रे नियतलिङ्गानामसंभवे व्यत्ययः । शेषो यवागूः शेषं यवागूः अर्धो भाण्डम् अर्धः शिखासंबाधः शालासंबाधो वर्त्मसंबाधं बृहदपि तद्बद्बभूव वर्त्मेत्यपि पठन्ति । प्रकाण्डं युवतिः आदिः कलत्रं गुणः प्रधानम्, उपसर्जनं स्त्री । संभवे तु शेषं दधि शेषः ओदन इत्युक्तम् । असंभवे विशेष्यगतलिङ्गग्रहणासंभवे इति गोपीनाथतर्काचार्यः । एवं च प्रकृते नामशब्दस्य नियतलिङ्गत्वेन पुल्लिङ्गमानभङ्गशब्दसमानाधिकरणत्वेऽपि न स्वलिङ्गपरित्याग इति वाच्यम् । नामशब्दस्यात्र लाक्षणिकत्वाल्लाक्षणिकस्य तु नियतलिङ्गस्यापि भिन्नलिङ्गशब्दसमानाधिकरणस्य स्वलिङ्गपरित्यागदर्शनाद्यथा क्रोष्टुनेऽरण्याय शिरो मे श्रीति (?) नाशङ्कनीयम् । नियतलिङ्गस्य लाक्षणिकस्य भिन्नलिङ्गसमानाधिकरणत्वेन स्वलिङ्गपरित्यागस्य काचित्कत्वात् । तथा चोक्तं कातन्त्रपरिशिष्टे—औपचारिके क्वचित्स्वलिङ्गं कुन्तेनदं स्त्रिया यष्ट्या पुरुषेण क्वचिदन्यथा क्रोष्टुने अरण्याय शिरो मे श्रियशो मूर्खमिति भाष्यम् (?) । अतो हि स्मरन्ति लिङ्गस्य लोकाश्रयत्वादिति । औपचारिक इति औपचारिकाः प्रायशः

स्वलिङ्गाः कचित्तु लक्ष्यादन्यलिङ्गा इति रहस्यमिति तर्काचार्यः। स्मरन्तीति वृद्धा इति शेषः। भाष्येऽप्युक्तं लिङ्गमशिष्यं लोकाश्रयत्वाल्लिङ्गस्येति।

सुरथो नाम राजेत्यत्र सुरथशब्दस्य वा सुरथशब्दप्रतिपाद्ये लक्षणा तदेकदेशे च सुरथशब्दे नामपदार्थस्याभेदसंबन्धेनान्वयः। तथा च नामाभिन्नसुरथशब्दप्रतिपाद्यो राजेत्यन्वयबोधः। शब्दानुशासनं नाम शास्त्रमित्यत्राप्येवम्। वृद्धिरादैच् इत्यत्र तु वृद्धिशब्दस्य वृद्धिसंज्ञके लक्षणेति न कुत्रापि काऽप्यनुपपत्तिरिति। एवं च अस्माच्छब्दादयमर्थो बोद्धव्य इतीच्छैव शक्तिर्न तु पदपदार्थयोरितरेतराध्यासमूलको ग्राह्यः तादात्म्यसंबन्धविशेष इत्याचक्षते। वस्तुतस्तु—

अर्थाभिधाने शब्दानां योग्यता शक्तिरुच्यते।
सा प्रसिद्धाऽप्रसिद्धा च द्विविधा परिकीर्तिता॥
आद्या गवादिशब्दानामर्थे गोत्वादिशालिनि।
देवदत्तादिशब्दानां तत्र तत्रापुरातनी॥
मुख्यार्थे यत्र शब्दस्य तात्पर्यं नेति गम्यते।
शक्तिरारोपिताऽन्यार्थे लक्षणा तत्र कथ्यते॥

गङ्गायां घोष इत्यादौ गङ्गादिपदस्य मुख्यार्थनदीविशेषादौ तात्पर्याभावात्तत्तीरादौ तद्गतपावनत्वादिधर्मप्रतिपत्तये शक्यतावच्छेदकारोपात् शक्तिरारोपितेति प्रतीयते। सैव लक्षणेत्युच्यते। उक्तं च दर्पणे—

मुख्यार्थबाधे तद्योगे ययाऽन्यार्थः प्रतीयते।
रूढेः प्रयोजनाद्वासौ लक्षणा शक्तिरर्पिता॥ इति।

अर्पिता वक्तृपुरुषेणारोपिता। तदवृत्तिधर्मस्य तद्वृत्तित्वेन प्रतिपादनमारोपः। काव्यप्रकाशेऽपि—

मुख्यार्थबाधे तद्योगे रूढितोऽथ प्रयोजनात्।
अन्योऽर्थो लक्ष्यते यत्सा लक्षणारोपिता क्रिया।

कर्मणि कुशल इत्यादौ दर्भग्रहणाद्ययोगाद्गङ्गायां घोष इत्यादौ च गङ्गादीनां घोषाद्यधिकरणत्वासंभवान्मुख्यार्थस्य बाधे विवेचकत्वादौ सामीप्ये च संबन्धे रूढितः प्रसिद्धेः, गङ्गातट इत्यादेः प्रयोगाद्येषां न तथा प्रतिपत्तिस्तेषां पावनत्वादीनां धर्माणां तथा प्रतिपादनात्मनः प्रयोजनाच्च मुख्येनामुख्यार्थो लक्ष्यते यत्स आरोपितः शब्दव्यापारः सान्तरार्थनिष्ठो

लक्षणा। मुख्यार्थस्य बाध इति। मुख्यार्थस्य तात्पर्यविषयान्वयबाध इत्यर्थः। ज्ञात इति शेषः। तेन कुन्ताः प्रविशन्तीत्यत्र कुन्तपदस्य कुन्तविशिष्टे छत्रिणो गच्छन्तीत्यत्र च छत्रिपदस्य छत्र्येकसार्थवाहिषु छत्र्यच्छत्रिषु न लक्षणानुपपत्तिः। प्रयोजनादिति तु प्रायिकम्। तेन कचिद्विनाऽपि प्रयोजनं लक्षणेति बोध्यम्। मुख्येनेति बाधितान्वयप्रतियोगित्वेनोपस्थितेन मुख्यार्थेन कारणभूतेनेत्यर्थः। अमुख्यार्थो लक्ष्यते इति अमुख्यार्थविषयकबोधानुकूलव्यापार इत्यर्थः। यदिति क्रियाविशेषणम्। सान्तरार्थनिष्ठो मुख्यार्थबाधग्रहादिव्यवधानेनोपस्थिते लक्ष्यार्थे स्वजन्यबोधविषयतासंबन्धेन स्थितः। एतेनात्र ग्राहककथनेन ग्राह्याया वक्तृतात्पर्यात्मिकाया लक्षणायाः सिद्धिः। यदित्यव्ययं ययेत्यर्थकम्। वृत्तावप्येवम्। आरोपिता वक्तृपुरुषेण लक्ष्यार्थविषतया जनिता क्रियावृत्तिरिति व्याख्यानं शक्यसंबन्धो लक्षणेति नैयायिकमतं चापास्तम्। लक्षणाया वृत्त्यन्तरत्वे मानाभावाद्गौरवात्फलाभावाद्दर्पणे 'लक्षणा शक्तिरर्पिता' इत्यनेनारोपितशक्तेर्लक्षणात्वस्य स्पष्टतयाऽभिधानाच्च। लक्षणाया वृत्त्यन्तरत्वमङ्गीकृत्य लक्षणाशक्तिरर्पितेत्यत्र शक्तिर्वृत्तिरिति व्याख्यातमेव। भाष्येऽपि सति तात्पर्ये सर्वे सर्वार्थवाचका इत्युक्तम्। लक्षणाया भेदास्तु काव्यप्रकाशादावुक्ता इह तु नोच्यन्ते ग्रन्थगौरवभयात्प्रकृतानुपयोगित्वाच्च। इदानीं प्रकृतमनुसरामः।

किं च निपातानां वाचकत्वे समुच्चयः शोभनः, समुच्चयं जानाति समुच्चयो ज्ञायते इत्याद्यर्थे च शोभनं च जानाति, च ज्ञायते इत्यादिरपि प्रयोगः स्यात्। तथा घटस्य समुच्चय इह घटस्याभाव इत्यादाविव घटश्च इह घटो नेत्यादावपि घटादिपदात्षष्ठी स्यादिति। तस्मान्निपातानां द्योतकत्वमेव न वाचकत्वमिति। अभियुक्तैरप्युक्तम्—

द्योतकाः प्रादयो येन निपाताश्चादयस्तथा।
उपास्येते हरिहरौ लकारो दृश्यते यथा॥
तथान्यत्र निपातेऽपि लकारः कर्मवाचकः।
विशेषणाद्ययोगोऽपि प्रादिवच्चादिके समः॥

येन हेतुना प्रादय उपसर्गा द्योतकास्तेनैव हेतुना तद्दृष्ट्या चप्रभृतयो निपाता अपि द्योतका एव न वाचकाः। अथोपसर्गाणामेव द्योतकत्वे प्रमाणाभावाद्वाचकत्वमेव तषां कुतो नेति, तथा च दृष्टान्तासिद्धि-

रिति चेन्नैवम् उपसर्गाणां वाचकत्वे उपस्येते इत्यत्र त्वया उपशब्दस्य प्रीतिर्धातोश्च व्यापारविशेषोऽर्थस्तयोश्च जन्यजनकभावः संसर्गो वाच्यः । एवं च प्रीतिरूपफलस्य धात्वर्थत्वाभावेन हरिहरयोर्धात्वर्थफलाश्रयत्वाभावात्कर्मत्वाभावेन धातोरकर्मकत्वात्कर्मणि लकारो नोपपद्येत ।

नन्वेवं चेदुपसर्गाणां द्योतकत्वमस्तु, अन्येषां निपातानां तु वाचकत्वमेवेति कुतो नाङ्गीक्रियत इति । न चोपसर्गं दृष्टान्तमाश्रित्यान्येषां निपातानां निपातत्वेन हेतुना द्योतकत्वं साधनीयमिति वाच्यम् । व्यभिचारसंशयेन निपातत्वस्य द्योतकत्वसिद्धिं प्रत्यप्रयोजकत्वादिति चेन्नैवम् । साक्षात्प्रभृतीनां वाचकत्वेऽपि साक्षात्क्रियते हरिर्नमस्क्रियते गुरुरित्यादौ दर्शितरीत्या कर्मणि लकारानुपपत्तेरिति मनसिकृत्याह उपास्येते इत्यादि कर्मवाचक इत्यन्तम् । उपास्येते इति । अथोपास्यते हरिरिति प्रथमोपस्थितमेकवचनं विहाय केनाभिप्रायेण द्विवचनमुदाहृतमिति चेदुच्यते—उपसर्गस्य वाचकत्वेऽपि भावे प्रत्यये उपास्यते हरिरिति प्रयोग उपपद्यते । एकवचनस्य भावेऽपि साधुत्वादित्येकवचनं नोदाहृतम्। ननु भावे प्रत्यये कृते तत्र हरिपदस्य प्रथमान्तत्वानुपपत्तिः । संबन्धे षष्ठीप्रसङ्गात् । न चोपशब्दार्थप्रीतौ हरिपदार्थस्याधेयतासंबन्धेनान्वयान्न हरिशब्दात्षष्ठीप्राप्तिः । प्रातिपदिकार्थविशेष्यत्वेन संबन्धविवक्षायामेव षष्ठीविधानादिति वाच्यम् । राज्ञो धनमित्याद्यर्थे राजा धनमित्यादिप्रयोगविरहेण प्रातिपदिकार्थयोरभेदातिरिक्तसंबन्धेनान्वयस्याव्युत्पन्नतया हरिपदार्थस्योपशब्दार्थप्रीतावाधेयतासंबन्धेनान्वयासंभवादिति चेदत्रोच्यते—प्रातिपदिकार्थयोरभेदातिरिक्तसंबन्धेनान्वयोऽव्युत्पन्न इत्यत्र यदि निपातातिरिक्तत्वेन प्रातिपदिकं विशेष्यते तदा हरिपदार्थस्योपशब्दार्थप्रीतावाधेयतासंबन्धेनान्वय उपपद्यते इत्यभिप्रायेणैकवचनं नोदाहृतमिति । तथान्यत्रेति । अन्यत्र साक्षात्क्रियते हरिर्नमस्क्रियते गुरुरित्यादिस्थलीयसाक्षादादौ ।

अथैवं चेत्ते प्राग्धातोरित्यनुशासनाद्धातोः प्राङ्नियतप्रयोगाणामुपसर्गाणामिवान्येषामपि गतिसंज्ञकनिपातानां द्योतकत्वमस्तु चप्रभृतिनिपातानां तु वाचकत्वमेवेत्यपि न वाच्यम् । भूयान्प्रकर्ष इत्याद्यर्थे भूयः प्रेत्यादिप्रयोगस्येव शोभनः समुच्चय इत्याद्यर्थे शोभनं चेत्यादिप्रयोगस्यापि विरहेण प्रादीनामिव चप्रभृतिनिपातानामपि द्योतकत्वस्यावश्यमभ्युपगन्तव्यत्वादित्याह—विशेषणेति । आदिना समुच्चयं जानातीत्याद्यर्थे

च जानातीत्यादौ द्वितीयाद्यर्थकर्मादिपरिग्रहः । एतेनोपसर्गाणामिवान्येषामपि निपातानां द्योतकत्वमेव न वाचकत्वमिति सिद्धम् । अत एव घटमानय नीलं, चन्द्रमिव मुखं पश्यतीत्यादौ घटमुखादिशब्दसमानाधिकरणत्वान्नीलचन्द्रादिपदाद्द्वितीयादयोऽप्युपपद्यन्ते ।

एवं च न पचति चैत्र इत्यादौ चैत्रकर्तृकपाकाभाव इत्यादिरूपशाब्दबोधस्य नञर्थाभावमुख्यविशेष्यकत्वात्कथं शाब्दबोधस्य सर्वत्र क्रियामुख्यविशेष्यकत्वमित्यपास्तम् । तत्रापि नञ्निपातस्य द्योतकत्वेन धातोरेव लक्षणया पाकाद्यभावार्थकत्वेन शाब्दबोधस्य क्रियामुख्यविशेष्यकतायाः सूपपादत्वात् । क्रियापदेन तत्र धात्वर्थस्य ग्रहणादिति ।

परे तु उपसर्गा एव द्योतका अन्ये तु निपाता वाचका एव । न चैवं चेत्साक्षात्करोति नमस्करोति हरिमित्यादौ हर्यादेः कर्मतानुपपत्तिर्धात्वर्थफलाश्रयत्वाभावादिति वाच्यम् । तत्र लक्षणया साक्षात्पदस्य प्रत्यक्षविषयपरतया नमःपदस्य च स्वापकर्षावधित्वप्रकारकबोधविषयपरतया नीलं करोति घटमित्यादौ घटादेरिव तत्र हर्यादेः कर्मत्वसंभवात् । नापि समुच्चयः शोभन इत्याद्यर्थे च शोभनमित्यादिः प्रयोगः स्यादिति वाच्यम् । निपातार्थे शब्दान्तरार्थस्य तादात्म्यसंबन्धेनान्वयस्य प्रायेणाव्युत्पन्नत्वात् । 'कार्तिक्यादौ यन्न दानं तदत्यन्तविनिन्दितम्' इत्यादौ कचिदेव तथाऽन्वयस्य दर्शनात् । नापि समुच्चयोऽस्ति समुच्चयं जानातीत्यर्थे चास्ति च जानातीत्यादिरपि प्रयोग आपद्येतेति वाच्यं, निपातार्थस्य कर्तृकर्मादिभावेनान्वयस्याव्युत्पन्नत्वात् । नापि घटस्य समुच्चयः, इह घटस्याभाव इत्यादाविव घटश्च, इह घटो नेत्यादावपि घटादिपदात्षष्ठीप्रसङ्ग इति वाच्यं, निपातार्थे घटादिपदार्थस्य प्रतियोगितासंबन्धेनान्वयादेव तत्र घटादिपदात्षष्ठीप्रसङ्गाभावात्, प्रातिपदिकार्थविशेष्यत्वेन संबन्धविवक्षायामेव षष्ठीविधानात् । प्रातिपदिकार्थयोर्भेदेनान्वयोऽव्युत्पन्न इत्यत्र तु प्रातिपदिकं निपातातिरिक्तत्वेन विशेषणीयमित्याहुस्तन्मते अयं घटो न नीलः, चन्द्र इव मुखमित्यादौ नीलचन्द्रादिपदस्य तिङ्समानाधिकरणत्वाभावात्प्रथमोपपत्त्यर्थं, घटमानय न नीलं, चन्द्रमिव मुखं पश्यतीयादौ नीलचन्द्रादिपदस्य घटमुखशब्दसमानाधिकरणत्वाभावात्ततो द्वितीयाद्युपपत्त्यर्थं च यत्नः कर्तव्य इति ।

एके त्वन्वयव्यतिरेकाभ्यां सर्वे एव निपातास्तत्तदर्थवाचकाः । अन्यथा

तत्तत्प्रकृतेरेव लक्षणया तत्तदर्थपरत्वसंभवेन तत्तत्प्रत्ययानामपि तत्तदर्थे शक्तिर्विलुप्येत । स्फुटीकृतं च निपातानां वाचकत्वमव्ययं विभक्तीति सूत्रे भगवता भाष्यकारेण कैयटोपाध्यायेन च । यत्र तु क्वचिदनुभवति सुखं चैत्रः, सुखमनुभूयते चैत्रेण, गुरुमुपास्ते शिष्यः, उपास्यते गुरुः शिष्येणेत्यादौ वाचकत्वं न संभवति तत्र धातोस्तत्तदर्थे वृत्तिरन्वादिनिपातास्तु तात्पर्यग्राहकाः प्रणमतीत्यादौ तु प्राद्युपसर्गाः प्रकृष्टाद्यर्थस्य वाचका एव । स्पष्टं चैतद्धातोः कर्मण इति सूत्रे भाष्यप्रदीपे इत्याहुः ।

इदमेव मतं न्याय्यमिति प्रतिभाति नः । एतन्मते अयं घटो नीलो न, चन्द्र इव मुखमित्यादौ प्रथमोपपत्त्यर्थमस्तिद्वयमध्याहर्तव्यम् । तत्र चायं घटो नीलो नेत्यत्रास्तिद्वयाध्याहारे अयं घटोऽस्ति नीलो नास्तीति भवति । तत्र नीलो नास्तीत्यत्रास्तेरसाधारणधर्मरूपो भावोऽर्थः । नञ्श्चात्यन्ताभावः । तथा च नीलत्वाभाववान् घटोऽस्तीति बोधः । चन्द्र इव मुखमित्यत्र त्वस्तिद्वयाध्याहारे चन्द्रोऽस्तीव मुखमस्तीति भवति । तथा च चन्द्रसत्तासदृशी मुखसत्तेति बोधः । सादृश्यं च कान्तिमत्त्वादि । तत्तद्धर्मसमानाधिकरणत्वेन कान्त्यादिमद्भवनं वाऽस्तेरर्थः ।

यद्वा यथा सुखमनुभवति चैत्रः, सुखमनुभूयते चैत्रेण, गुरुमुपास्ते शिष्यः, उपास्यते गुरुः शिष्येणेत्यादौ कर्तृकर्मप्रत्ययोपपत्त्यर्थं धातोरनुभवोपासनाद्यर्थे वृत्तिमङ्गीकृत्यानूपादि उपसर्गाणां द्योतकत्वमङ्गीक्रियते । तथा अयं घटो नीलो न, चन्द्र इव मुखमित्यादावपि तिङ्समानाधिकरणत्वं विना प्रथमाया अनुपपत्तेस्तदुपपत्त्यर्थं नीलादिपदस्य नीलादिभिन्ने चन्द्रादिपदस्य तु चन्द्रादिसदृशे लक्षणामङ्गीकृत्य नञिवयोर्द्योतकत्वमङ्गीकार्यमित्येकमेवास्तिपदमध्याहर्तव्यमित्यदोषः ।

तथा च—

वाचकत्वं निपातानामन्वयव्यतिरेकतः ।
क्वचित्फलानुरोधेन द्योतकत्वमपीष्यते ॥

इति स्थितम् । एवं च घटमानय न नीलं चन्द्रमिव मुखं पश्यतीत्यादावपि नञिवयोर्द्योतकत्वमङ्गीकृत्य शाब्दबोधस्य क्रियामुख्यविशेष्यकत्वमुपपादनीयमिति न काऽप्यनुपपत्तिरित्यलमधिकेन ।

विष्णुप्रियायां जातेन रुद्रनारायणात्सुतः ।
महेशसदृशाद्रामकिशोरेण द्विजातिना ॥ १ ॥

कृता या विदुषां प्रीत्यै शाब्दबोधप्रकाशिका ।
तत्रायं शाब्दबोधस्य क्रियामुख्यत्वनिर्णयः ॥ २ ॥

ननु शाब्दबोधे कीदृशे स्थले कस्मिन्पदार्थे कस्य पदार्थस्यान्वय इत्याकाङ्क्षायामाह—

कर्त्राख्यातस्थले तत्र चैत्रादेः कर्तुराश्रये ।
तिङर्थेऽस्य तु धात्वर्थे व्यापारांशेऽन्वयो मतः ॥ ३ ॥
ग्रामादेः कर्मणस्तत्र द्वितीयार्थेऽन्वयोऽस्य तु ।
धातुवाच्ये फले तस्य तथा व्यापार इष्यते ॥ ४ ॥

तत्र शाब्दबोधे आख्यातस्थले चैत्रो ग्रामं गच्छतीत्यादौ चैत्रादेः कर्तुस्तिङर्थे आश्रये अभेदसंबन्धेनान्वयः । तत्राश्रयस्य तिङर्थत्वं तु "लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः" इत्यत्र चकारेण "कर्तरि कृत्" इत्यतः 'कर्तरि' इत्यनुवृत्तेः । तत्रादेशानां तिबादीनां शक्तिमादेशित्वेन प्रकल्पितेषु लकारेषु प्रकल्प्यत इत्युक्तमिति बोध्यम् । आदेशानामेव तत्तदर्थे **शक्तिर्न त्वादेशिनामिति वैयाकरणसिद्धान्तात्** ।

कर्तृत्वं च धात्वर्थव्यापाराश्रयत्वं, तथा चोक्तं—

धातुनोक्तक्रिये नित्यं कारके कर्तृतेष्यते , इति ।

यद्यपि क्रिया व्यापारः स च वृत्त्या धातूपस्थापितो धातुजन्यबोधमुख्यविशेष्योऽर्थस्तथाऽपि वृत्त्या धातूपस्थापितस्य धातुनोक्तेत्यनेनैव लाभादत्र क्रियापदं धातुजन्यबोधमुख्यविशेष्यार्थपरम् । तथा च धातुनोक्तक्रिय इत्यस्य वृत्त्या धातूपस्थापितधातुजन्यबोधमुख्यविशेष्यार्थाश्रय इत्यर्थः ।

एवं च वृत्त्या तद्धातूपस्थापिततद्धातुजन्यबोधे मुख्यविशेष्यार्थाश्रयत्वं तद्धात्वर्थकर्तृत्वमिति कर्तृलक्षणम् । 'स्वतन्त्रः कर्ता' इति सूत्रे स्वतन्त्रपदमप्येतत्परमिति बोध्यम् । फलाश्रयेऽतिव्याप्तिवारणाय तद्धातुजन्यबोधमुख्यविशेष्येति । मुख्यपदानिवेशेऽपि तत्रैवातिव्याप्तिरिति । मुख्यत्वमिह वृत्त्या तद्धातूपस्थापितार्थाविशेषणत्वम् । कर्माख्यातसमभिव्याहृतत्वेन तद्धातुर्विशेषणीयः । तेन गम्यते ग्रामो गन्तव्यो ग्राम इत्यादौ धातोः फलमुख्यविशेष्यकबोधजनकत्वेऽपि न क्षतिः । उपस्थापितान्तनिवेशाच्च पक्त्वा भुङ्क्ते इत्यत्र पाकसमानकर्तृकं पाकोत्तर-

कालनिष्ठं वर्तमानकालवृत्त्येककर्तृकं भोजनमिति वाक्यार्थबोधमुख्यविशेष्यभोजनाश्रयस्य न पचधात्वर्थकर्तृत्वम्। तादृशवाक्यार्थबोधस्य पचधातुजन्यत्वमप्यस्तीति तदापत्तिः। आश्रयत्वं च चैत्रो गच्छतीत्यादौ चैत्रादिपदस्य शरीरपरत्वे समवायसंबन्धेनात्मपरत्वे तु स्वजनककृत्याश्रयत्वरूपपरंपरासंबन्धेन स्वसमवायिशरीरावच्छिन्नत्वरूपपरंपरासंबन्धेन वा। रथो गच्छतीत्यादौ समवायसंबन्धेन चैत्रो जानातीच्छतीत्यादौ चैत्रादिपदस्य शरीरपरत्वेऽवच्छेदकतासंबन्धेनात्मपरत्वे तु समवायसंबन्धेन। शब्दादर्थः प्रकाशते, देवदत्ताय रोचते मोदकः, इत्यादौ तु विषयतासंबन्धेन। कन्यां विवहतीत्यादौ तु विवाहस्य ग्रहणरूपत्वे चैत्रादिपदस्य च शरीरपरत्वेऽवच्छेदकतासंबन्धेनात्मपरत्वे तु समवायसंबन्धेन। विवाहस्य दानरूपत्वे तु उद्देश्यतासंबन्धेन। अत्र घटोऽस्तीत्यादौ तु स्वरूपसंबन्धेन। घटो नश्यति, ज्ञानं नश्यतीत्यादौ तु प्रतियोगितासंबन्धेन बोध्यम्। एवमन्यत्रापि यथानुभवमवगन्तव्यम्।

क्रियाश्रयस्य कर्तृत्वेऽपि क्रियाया धातुलभ्यत्वादाश्रयमात्रं तिङर्थ इति बोध्यम्। अनन्यलभ्यस्यैव शब्दार्थत्वात्।

नैयायिकास्तु—आख्यातस्य कृतिर्वाच्या। गच्छति गमनं करोति, पचति पाकं करोतीति, करोतिना विवरणात्। किं करोतीति कृतिप्रश्ने गच्छति पचतीत्याद्युत्तरस्याख्यातस्य कृत्यर्थकत्वं विनानुपपत्तेश्च नतु कर्ता, अनन्तकृतेः शक्यतावच्छेदकत्वे गौरवात्। गमनानुकूलकृत्याश्रयश्चैत्र इत्याद्यन्वयबोधस्त्वाख्यातार्थस्य कृतेराश्रयतासंबन्धेन प्रथमान्तपदार्थेऽन्वयात्। अत्र च—'कथं पुनर्ज्ञायतेऽयं प्रकृत्यर्थोऽयं प्रत्ययार्थ इति? अन्वयव्यतिरेकाभ्याम्। अन्वयाद्व्यतिरेकाच्च। कोऽसावन्वयो व्यतिरेको वा। इह 'पचति' इत्युक्ते कश्चिच्छब्दः श्रूयते—पच्शब्दश्चकारान्तः, अतिशब्दश्च प्रत्ययः। अर्थोऽपि कश्चिद्गम्यते—विक्लित्तिः कर्तृत्वमेकत्वं च। पठतीत्युक्ते कश्चिच्छब्दो हीयते कश्चिदुपजायते कश्चिदन्वयी। पच्छब्दो हीयते, पठशब्द उपजायते, अतिशब्दोऽन्वयी। अर्थोऽपि कश्चिद्धीयते, कश्चिदुपजायते, कश्चिदन्वयी। विक्लित्तिर्हीयते, पठिक्रियोपजायते, कर्तृत्वं चैकत्वं चान्वयी। तेन मन्यामहे यः शब्दो हीयते तस्यासावर्थो योऽर्थो हीयते, यः शब्द उपजायते तस्यासावर्थो योऽर्थ उपजायेत, यः शब्दोऽन्वयी तस्यासावर्थो योऽर्थोऽन्वयी' इति भूवादिभाष्यमप्यनुकूलम्।

अतिशब्दश्चेति । यद्यप्ययं प्रत्ययसमुदायस्तथाऽपि प्रकृतिभागावबोधपरत्वात्प्रत्ययभागपर्यालोचनेऽनादरादेवमुक्तम् । अथवा पूर्वाचार्यैः कैश्चिदतिः प्रत्ययत्वेन कल्पित इति तदपेक्षयैतदुक्तमिति कैयटः । रथो गच्छति चैत्रो जानातीच्छति यतते द्वेष्टि विद्यते निद्रातीत्यादावाश्रयत्वे नश्यतीत्यादौ तु प्रतियोगित्वे निरूढलक्षणेत्याहुः,—तदनुशासनविरुद्धम् । " लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः " इत्यनुशासनेन हि कर्तरि लकारो विधीयते न तु कृतौ । न च तत्र चकारलब्धं कर्तृपदं कर्तृत्वपरमिति वाच्यम् । तथा सति कृतोऽपि कृतिवाचकत्वापत्तेः । " कर्तरि कृत् " इत्यतो हि तत्र कर्तृग्रहणमनुवर्तते । नचेष्टापत्तिः । गन्ता चैत्रः पक्ता चैत्रः इत्यादावन्वयबोधानुपपत्तेः । न च गच्छति चैत्रः, पचति चैत्रः इत्यादावाख्यातार्थकृतेरिव गन्ता चैत्रः पक्ता चैत्रः इत्यादौ कृदर्थकृतेरपि चैत्रादिपदार्थे आश्रयतासंबन्धेनान्वय इति वाच्यम् । निपातातिरिक्तप्रातिपदिकार्थयोरभेदातिरिक्तसंबन्धेन साक्षादन्वयस्याव्युत्पन्नत्वात् । अन्यथा गमनानुकूलकृतिश्चैत्रो द्रव्यत्वं घट, इत्यादयोऽपि प्रयोगा आपद्येरन् ।

किंच कृतां कृतिवाचकत्वे मित्रा पक्त्रीत्यादौ पक्त्र्यादिपदस्य स्त्रीलिङ्गत्वमपि नोपपद्यते , समानाधिकरणविशेषणस्यैव विशेष्यसमानलिङ्गकत्वनियमात् । अन्यथा राज्ञः स्त्रीत्यादौ राजादिपदस्यापि स्त्रीलिङ्गत्वापत्तेः । तस्मात्कृतः कर्तृवाचकत्वमवश्यमभ्युपगन्तव्यम् । तदनुरोधेन च कर्तरि कृदित्यत्र कर्तृपदस्य कर्तृत्वविशिष्टपरताऽवश्यं वक्तव्या । तस्यैव च कर्तृपदस्य " लः कर्मणि च " इत्यत्रानुवृत्तस्य कर्तृत्वपरताया असंभवात् कथमाख्यातस्य कृतिवाचकत्वमनुशासनसिद्धमिति । न च कृतः कर्तृवाचकत्वानुरोधेन कर्तरि कृदित्यत्र कर्तृपदस्य कर्तृत्वविशिष्टपरत्वमस्तु " लः कर्मणि च " इत्यत्रानुवृत्तस्य तु तस्य कर्तृत्वपरत्वमेवेति वाच्यम् । एकस्य कर्तृपदस्य सूत्रद्वयेऽर्थद्वयकल्पने गौरवान्मानाभावात् । गच्छन्तं पचन्तं पचमानं वा चैत्रं पश्येत्यादौ शतृशानजन्तस्यापि कृतिबोधकतापत्त्योक्तयुक्त्याऽन्वयबोधानुपपत्तेर्गच्छन्तीं पचन्तीं पचमानां वा मित्रां पश्येत्यादौ शतृशानजन्तस्य विशेष्यसमानलिङ्गकत्वानुपपत्तेश्च दुर्वारत्वात् । " लः कर्मणि च " इत्यादिना विहितस्यैव हि लटस्तिबादिवच्छतृशानजावप्यादिश्येते ।

किं चाख्यातस्य कृतिवाचकत्वे चैत्रो ग्रामं गच्छति, चैत्रस्तण्डुलं पचतीत्यादौ चैत्रादिपदात्कर्तरि तृतीया प्राप्नोति । तस्य कर्तृवाचकत्वे तु न तृतीयाप्राप्तिः । आख्यातेन कर्तुरभिहितत्वात् । ‘ कर्तृकरणयोस्तृतीया ” इत्यनेन हि अनभिहिते कर्तरि तृतीया विधीयते । तत्रानभिहित इत्यस्य तिङादिभिरनुक्त इत्यर्थः । अथाख्यातस्य कृतिवाचकत्वे कर्तुरनभिहितत्वेऽपि तद्गतसंख्याया आख्यातेनाभिहितत्वादुक्तस्थले तृतीया न भवति । अनभिहित इत्येतद्धि संख्याविशेषणम् अनुक्ते संख्याने इत्यर्थः । अथवा अभिधानमभिहितम् “ नपुंसके भावे क्तः ” तथा चाभिनभिहिते अनभिधाने संख्याया इत्यर्थः । न चान्यत्र क्लृप्तशक्तेः सुप एव संख्योपस्थितिसंभवे न तिङां तदभिधायकत्वमिति वाच्यम् । चैत्रो मैत्रश्च गच्छत इत्यादौ विनाऽपि तादृशसुपं द्वित्वादिप्रत्ययात् । लाघवादेकवचनत्वादिरूपेणैकत्वादौ शक्तत्वाच्च । सुबेकवचनत्वादिरूपेण शक्तिकल्पने तु गौरवं स्यादिति चेन्न । संख्यायाः शब्दतोऽलाभादध्याहारे च प्रमाणाभावात्कर्मणि द्वितीयेत्यादिसूत्रोपात्तकर्मणीत्यादिनैवाभिहित इत्यस्यान्वयसंभवाच्च ।

किं चानभिहितपदस्य संख्यानभिधानपरत्वे चैत्रो ग्रामं गच्छतीत्यादौ कर्त्राख्यातार्थसंख्याया विनिगमनाविरहेण कर्मण्यप्यन्वयापत्तेर्दुर्वारत्वाद्ग्रामादिपदाद्द्वितीयाऽपि न स्यात् । आख्यातस्य कर्तृवाचकत्वे तु तदर्थसंख्यायाः कर्मण्यन्वयो न भवति तस्यैकपदोपात्तत्वाभावात् । एकपदोपात्त एव साधने आख्यातार्थसंख्यान्वयस्य व्युत्पन्नत्वात् । आख्यातस्य कृतिवाचकत्वे तद्वक्तुमशक्यम् । न चाख्यातार्थभावनान्वयिन्येव तदर्थसंख्याया अन्वयः, एकपदोपात्तयोर्भावनासंख्ययोरेकत्रान्वयस्य व्युत्पन्नत्वादिति वाच्यम् । एकपदोपात्तभावनान्वयित्वापेक्षया लाघवेनैकपदोपात्तसाधनत्वस्यैव संख्यान्वयनियामकताकल्पनाया युक्तत्वात् । कर्त्रेकत्वत्वादिना शक्तिकल्पने कर्तुरप्यभिधेयतया शक्यतावच्छेदके शक्ततावच्छेदके च गौरवमधिकं स्यात् ।

किंच गन्ता चैत्रः, अधीती ब्राह्मणः, कृतप्रणामो जनः इत्यादिषु कृदन्तादिषु कृत्तद्धितसमासैः संख्याया अनभिधानाच्चैत्रब्राह्मणजनादिशब्देभ्यस्तृतीयापत्तिर्दुर्वारा ।

अथ कर्तृकरणयोस्तृतीयेत्यत्र कर्तृपदं कर्तृत्वपरम् । तेनानभिहिते

कर्तृत्वे तृतीया भवति इति सूत्रार्थे चैत्रो ग्रामं गच्छति चैत्रस्तण्डुलं पचतीत्यादिषु चैत्रादिपदान्न तृतीयापत्तिराख्यातेन कर्तृत्वस्याभिहितत्वात्। गन्ता चैत्र इत्यादिषु कृदादिभिः कर्तुरभिहितत्वे कर्तृत्वमप्यभिहितमेवेति न तत्रापि चैत्रादिपदात्तृतीयापत्तिशङ्केति चेदिदमपि न चारुतरमनुशासनस्थकर्तृपदस्य मुख्यार्थत्वसंभवे लक्षणाया अन्याय्यत्वात्।

किं चाख्यातस्य कृतिवाचकत्वे त्वं पचसि, अहं पचामि, चैत्रः पचतीत्यादिषु युष्मदादेः समानाधिकरणत्वाभावेन 'युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः, अस्मद्युत्तमः, शेषे प्रथमः,' इति सूत्रत्रयोक्ता पुरुषव्यवस्थापि नोपपद्यते । भिन्नाभ्यां रूपाभ्यामेकधर्मिबोधकत्वलक्षणं सामानाधिकरण्यमप्रसिद्धम्। संभवादन्यादृशं तु न वार्यत इति तु बालप्रतारणम् । शब्दशास्त्रे समानाधिकरणपदस्य सर्वत्र तादृशशाब्दसामानाधिकरण्यविशिष्टपरतया दृष्टत्वादत्रान्यादृशसामानाधिकरण्यमादाय पुरुषव्यवस्थोपपदानस्यान्याय्यत्वात् ।

एवं चैत्रः पचतीत्यादौ चैत्रादिप्रातिपदिकस्य तिङ्समानाधिकरणत्वाभावेन ततः प्रथमापि नोपपद्यते। तिङ्समानाधिकरणे प्रथमेति वार्तिकेन प्रातिपदिकस्य तिङ्समानाधिकरणत्व एव ततः प्रथमाविधानात्। तथा स पचति तौ पचतस्ते पचन्तीत्यादौ तिङन्तस्य कर्तृपदसमानवचनकत्वनियमोऽपि नोपपद्यते । समानाधिकरणविशेष्यविशेषणपदयोरेव समानवचनकत्वनियमात् । न च पचति पाकं करोतीति यत्नार्थककरोतिनाख्यातस्य विवरणात्तस्य यत्ने शक्तिरवधार्यत इति वाच्यम् । तत्र पाकपदेन धातोर्विक्लित्तिरूपफलार्थकथनेन व्यापारवाचिना च करोतिना तस्य व्यापाररूपार्थकथनेनाख्यातेनैव चाख्यातार्थकथनेन यत्नार्थककरोतिनाख्यातस्य विवरणादिति हेतोरेवासिद्धेः। करोतेर्व्यापारवाचित्वं न तु यत्नवाचित्वमित्यभियुक्तैरप्युक्तम्—

व्यापारो भावना सैवोत्पादना सैव च क्रिया ।
कृञोऽकर्मकतापत्तेर्नहि यत्नोऽर्थ इष्यते । इति ।

(यदि ? एतेन) कृधातोर्यत्नार्थकत्वं विना किं करोतीति यत्नप्रश्ने पचतीत्युत्तरं नोपपद्यते इत्यपास्तम्। कृञः क्रियावाचितया किं करोतीत्यस्य क्रियाप्रश्नत्वेन यत्नप्रश्नत्वाभावात् । कृञो यत्नार्थकताविरहात्। न चाख्यातस्याश्रये शक्तावाश्रयत्वस्य स्वरूपसंबन्धविशेषरूपत्वेन नाना

त्वाच्छक्यतावच्छेदके गौरवमिति वाच्यम् । प्रामाणिकगौरवस्यादोषत्वात् । भवन्मतेन रथो गच्छति चैत्रो जानातीत्यादौ आख्यातस्याश्रयत्वे लक्षणाया आवश्यकत्वेन लक्ष्यतावच्छेदकगौरवस्य त्वयाऽपि दुष्परिहरत्वात् । नहि शक्यतावच्छेदकगौरवं दोषो लक्ष्यतावच्छेदकगौरवं न दोष इत्यत्र प्रमाणमस्ति । किं चास्मन्मते आश्रयत्वस्याखण्डोपाधिशक्तिरूपत्वेन न गौरवमिति । कर्तृत्वविशिष्टस्य प्रथमतो भासमानत्वात् । नत्वेतेन कर्तुः कर्त्राख्यातार्थत्वं निराकृतमिति बोध्यम् । तथा सति दर्शितदोषाणां दुर्वारतापत्तेः ।

अथवा शक्तिः कारकमिति पक्षमाश्रित्य भाष्ये कर्त्राख्यातस्य कर्तृत्वमर्थ इत्युक्तम् । तथा चोक्तं हरिणा—

स्वाश्रये समवेतानां तद्वदेवाश्रयान्तरे ।
क्रियाणामभिनिष्पत्तौ सामर्थ्यं साधनं विदुः ॥

स्वाश्रये शक्त्याश्रये अर्थात्कर्तरि कर्मणि च समवेतानां तथा आश्रयान्तरे करणत्वादिशक्त्याश्रयभिन्ने कर्तृत्वशक्त्याश्रये कर्मत्वशक्त्याश्रये च समवेतानां क्रियाणामभिनिष्पत्तौ यत्सामर्थ्यं तत्तत्क्रियानिष्पत्त्यनुकूला कर्तृत्वकर्मत्वकरणत्वादिरूपा शक्तिस्तत्साधनं कारकमित्यर्थः । शक्त्याश्रयस्य कारकत्वेन तद्व्याप्यकर्तृत्वादिना च व्यवहारः शक्तिशक्तिमतोरभेदविवक्षया । एवं च त्वं पचसीत्यादौ सामानाधिकरण्यमपि नानुपपन्नमित्यलमधिकेन ।

अस्येत्यादिः अस्य तिङर्थाश्रयस्य । धात्वर्थ इति । यद्यपि संयोगादिरूपं फलं व्यापारश्च धातोरर्थस्तथाऽपि कर्त्राख्यातार्थाश्रयस्य स्वनिरूपिताधेयतासंबन्धेन व्यापारांश एवान्वयो व्युत्पन्नस्तदाश्रयस्यैव कर्तृत्वादिति भावः ।

यत्तु—कथं पुनर्ज्ञायतेऽयं प्रकृत्यर्थोऽयं प्रत्ययार्थ इति प्रागुक्तभूवादिसूत्रभाष्याच्चैत्रो ग्रामं गच्छतीत्यादौ संयोगादिरूपं फलं गम्यादिधातोरर्थः । व्यापारस्तु कर्तृप्रत्ययार्थः । धात्वर्थफलप्रत्ययार्थव्यापारयोर्जन्यजनकभावः संसर्गः । न च तत्र व्यापारस्य कर्तृप्रत्ययार्थताया अभ्युपगमात् व्यापारसत्त्वे फलानुत्पाददशायां पाको भविष्यतीतिप्रयोगस्य, व्यापारविगमे फलसत्त्वे पाको विद्यत इति प्रयोगस्य चापत्तिः, भावविहितघञादीनामपि व्यापारोऽर्थस्तत्तद्विधिसूत्रे भावपदस्य व्यापारपरत्वात्

कर्तृत्वं धात्वर्थानुकूलप्रत्ययार्थव्यापाराश्रयत्त्वम् । कर्मत्वं तु—परसमवेतप्रत्ययार्थव्यापारजन्यधात्वर्थफलाश्रयत्वम् । महीरुहो विहगेन संयुज्यते, घटः पटेन संयुज्यते, जातिर्द्रव्यगुणकर्मसु समवैति, घटो भवति श्वेत इत्यादौ धात्वर्थानुकूलव्यापाराप्रतीतेः संयोगादिमत्त्वमात्रप्रतीतेश्च प्रत्ययस्य व्यापारवाचित्वाभावाद्धातौ न सकर्मकत्वमिति मतं तदयुक्तम् । जिगमिषति—पिपक्षति—इत्यादौ प्रत्ययस्य व्यापारवाचित्वाभावेन सन्प्रत्ययानुपपत्तेरपचत्यपि विक्लित्तिरूपफलानुकूलादृष्टवति पचतीति प्रयोगप्रसङ्गाद्विभागरूपफलानुकूलपूर्वदेशसंयोगवति निश्चलेऽपि त्यजतीति प्रयोगप्रसङ्गाच्च । फलव्यापारयोरुभयोर्धात्वर्थत्वेऽपि भूवादिसूत्रभाष्ये यत्फलमात्रकीर्तनं तत्फलस्योद्देश्यत्वेन प्रधानत्वान्न त्वेतेन व्यापारस्य धात्वर्थत्वं निराकृतमिति बोध्यम् । तथा सति कारकसूत्रभाष्यविरोधापत्तेश्च । तत्र हि व्यापारस्य धात्वर्थत्वमुक्तम् । तथा हि—अधिश्रयणोदकासेचनतण्डुलावपनैधोपकर्षक्रियाः प्रधानस्य कर्तुः पाकः । अधिश्रयणोदकासेचनतण्डुलावपनैधापकर्षणादिक्रियाः कुर्वन्नेव देवदत्तः पचतीत्युच्यते । तत्र तदापत्तिर्वर्तते एष प्रधानकर्तुः पाकः एतत्प्रधानकर्तुः कर्तृत्वं द्रोणं पचत्याढकं पचतीति कारके सूत्रे भाष्ये उक्तम् । अत्र व्यापारस्य, भूवादिसूत्रभाष्ये च फलस्य धात्वर्थत्वाभिधानात् फलव्यापारयोरुभयोर्धात्वर्थत्वं बहुभिः सुधीभिरङ्गीकृतमित्यवगन्तव्यम् ।

इति शाब्दबोधप्रकाशिका ।

---

१ इयत्येव शाब्दबोधप्रकाशिकोपलब्धा ।

'गुजराती' मुद्रणालयस्थानि क्रय्यसंस्कृतपुस्तकानि ।

मूल्यं मार्गव्ययः

१ श्रीमद्भगवद्गीता प्रथमो गुच्छः **Bhagavat-Geeta with 7 commentaries**—आनन्दगिरिकृतटीकासंवलितशांकरभाष्य—जयतीर्थविरचितटीकासंवलितानन्दतीर्थीय (माध्व) भाष्य—रामानुजभाष्य—पुरुषोत्तमजीप्रकाशितामृततरङ्गिणी—नीलकण्ठीसमेता । मञ्जुलैरायसाक्षरैर्मुद्रिता । पृष्ठान्यष्टशतपरिमितानि सुचिक्कणानि । मूल्यम् रू. ... ६–०–० ०–७–०

२ श्रीमद्भगवद्गीता द्वितीयो गुच्छः **Bhagavat-Geeta with 8 other commentaries**--निम्बार्कमतानुयायिश्रीकेशवकाश्मीरिभट्टाचार्यपादप्रणीता–'**तत्त्वप्रकाशिका,**' श्रीमधुसूदनसरस्वतीकृता–'**गूढार्थदीपिका,**' श्रीशङ्करानन्दप्रणीता–'**तात्पर्यबोधिनी,**' श्रीधरस्वामिकृता–'**सुबोधिनी,**' श्रीसदानन्दविरचितः–'**भावप्रकाशः,**' श्रीधनपतिसूरिविरचिता–'**भाष्योत्कर्षदीपिका,**' देवज्ञपण्डितश्रीसूर्यविरचिता–'**परमार्थप्रपा,**' पूर्णप्रज्ञमतानुसारिश्रीराघवेन्द्रकृतः–'**अर्थसंग्रहः**' इत्येताभिर्व्याख्याभिः सहिता । अत्र श्लोकाः स्थूलतमाक्षरैष्टीकाश्च स्थूलाक्षरैर्मुद्रिताः, वृद्धा मा क्लेशिषतेति । मू. रू. १०–०–० ०–१५–०

३ उत्तरगीता **Uttara-Geeta with a commentary**—गौडपादीयदीपिकाख्यव्याख्यायुता । भगवत्पादश्रीशंकराचार्याणां परमगुरुभिः श्रीशुकाचार्याणां च शिष्यैः श्रीगौडपादाचार्यैः प्रणीतेयं व्याख्येत्येतावत्कथनमलमस्या महिमानमवगमयितुम् । मूल्यम् रू. ०–३–० ०–०–६

४ श्रीमद्वाल्मीकिरामायणम् । **Valmiki Ramayana with 3 well-known commentaries,** सर्वतन्त्रस्वतन्त्रप्रतिभेन शब्देन्दुशेखरादिनानानिबन्धप्रणेत्रा श्रीमन्नागेशभट्टेन स्वशिष्यस्य सतो जीविकाप्रदातु शृङ्गवेरपुराधीशस्य

	मूल्यं	मार्गव्ययः
वीरमणेः श्रीरामराजस्य नाम्ना प्रणीतया रामायणतिलकाख्यया टीकया, पण्डितश्रीवंशीधर–शिवसहायाभ्यां प्रणीतया रामायणशिरोमण्याख्यया •टीकया, श्रीगोविन्दराजप्रणीतया भूषणाख्यया टीकया च सह मुद्रयितुमारब्धमस्माभिः श्रीमद्वाल्मीकिरामायणम् । तच्च सप्तभिः खण्डैः समापयिष्यामः ।		
बालकाण्डम्। प्रथमं खण्डम् **Bal Kanda** उपरिनिर्दिष्टटीकात्रयोपेतम् । मूल्यम् रू.	३–०–०	०–५–०
अयोध्याकाण्डम्। द्वितीयखण्डम् **Ayodhya Kanda,**—उर्ध्वनिर्दिष्टटीकात्रयोपेतम् । मू. रू.	५–०–०	०–७–०
अरण्यकाण्डम् । तृतीयखण्डम् । **Aranya Kanda** उपरिनिर्दिष्टटीकात्रयोपेतम् । मूल्यम् रू.	२–१२–०	०–४–०
किष्किन्धाकाण्डम्। चतुर्थ खण्डम् **Kishkindha Kanda** उपरिनिर्दिष्टटीकात्रयोपेतम् । मूल्यम् रू.	२–१०–०	०–४–०
५ **स्तोत्रमुक्ताहारः–Stotra-muktahar containing 256 Stotras** अस्मिन् २५६ स्तोत्राणि संगृहीतानि । यद्यपि सन्ति भूरीणि स्तोत्रपुस्तकानि मुद्रितानि भूरिभिस्तथापि न तेष्वियतां स्तोत्ररत्नानां संग्रहः । अस्माभिः पूर्वमुद्रितानां स्तोत्राणां पुस्तकानि काश्यादिक्षेत्रेभ्यो भूयसा प्रयासेन द्रविणव्ययेन च समासाद्य तेभ्यश्च प्रसादगुणयुक्तानि स्तोत्राणि संकलय्य संशोध्य च तानि भाविकजनानां कृतेऽत्र समावेशितानि तदाशास्महे श्रद्धावन्तो जनाः सफलयिष्यन्ति प्रयत्नमस्माकममुमिति । मूल्यम् रू.	०–८–०	०–२–०
६ **संस्कारमयूखः—Samskar Mayukha** मीमांसकनीलकण्ठभट्टसुतशंकरभट्टकृतः । अत्र संस्काराणां स्वरूपं कालः इतिकर्तव्यता वर्णधर्मा आश्रमधर्माश्च विस्तरतो मूलवचनोपन्यासपुरःसरं निरूपिताः । मूलवचनानि चाप्रतिपत्तिविप्रतिपत्तिसंभावनास्थलेषु क्रमेण पर्यायशब्दप्रदर्शनेन मीमांसकाभिमतन्यायानुसरणेन च व्याख्यातानि । अन्ते कातीयसूत्रानुसारिप्रयोगाश्च दत्ताः । पूर्वं वाराणस्यादिषु मुद्रितोऽप्ययं वर्णपदवाक्यभ्रंशविपर्ययादिदोषप्रचुरतयाऽप्रविभक्तविषयतया		

च भृशं दुर्बोधो विपरीतबोधकरश्चासीत्। अस्माभिस्तु ग्रन्थकृतैव पुनः शोधितस्य वर्धितस्य चास्य ग्रन्थस्य पुस्तकमासाद्य विषयांश्च प्रविभज्य शोधने च महान्तमायासमास्थाय मुद्रितः। मू. रू. ... ... मूल्यं ०—१२—० मार्गव्ययः ०—१—०

७ **आचारमयूखः—Achara Mayukha** नीलकंठभट्टकृतः। प्रातःस्मरणादिशयनान्तस्याह्निकक्रियाकलापस्य निरूपणपरो ग्रन्थः। मूल्यम् ... ०—८—० ०—१—०

८ **मनुस्मृतिः—Manu Smriti** कुल्लूकभट्टकृतटीकया, ग्रन्थान्तरेषु मनुनाम्नोल्लिखितैरिदानींतनमनुस्मृतिपुस्तकेष्वनुपलभ्यमानैः श्लोकैः, पद्यानां वर्णानुक्रमकोशेन, विषयानुक्रमेण च सहिता। सूक्ष्मेक्षिकया संशोधिता च। मू. रू. ... ... १—८—० ०—३—०

९ **विदुरनीतिः—Vidura-Niti with a commentary** संस्कृतटीकोपेता नीतिशास्त्राभ्यासिनां विद्यार्थिनामतीवोपयोगिनी। मू. रू. ... ०—४—० ०—१—०

१० **वेदान्तरहस्यम्—Vedanta Rahasya** वेदान्तवागीशभट्टाचार्यविरचितम्। अत्राद्वैतमतसिद्धान्तो निरूपितः। उपपत्तिश्च प्रदर्शिता। भाषाऽतिसरला प्रौढा च। मूल्यम् रू.... ... ... ०—१—० ०—०—६

११ **विशिष्टाद्वैतमतविजयवादः—Vishisht-advaita-Mata-Vijaya-Vada** नरहरिपण्डितकृतः। अत्र विशिष्टाद्वैतमते परेषामाक्षेपान्निराकृत्य विशिष्टाद्वैत एवोपनिषदां तात्पर्यं व्यवस्थापितम्। मूल्यम् रू. ... ... ०—१—० ०—६—०

१२ **रघुवंशमहाकाव्यम्—Raghuvamsha With Mallinatha's commentary** श्रीकालिदासकृतम्। मल्लिनाथकृतसंजीविन्याख्यटीकासहितम्। मू. रू. ... ... ०—१०—० ०—३—०

१३ **रघुवंशमहाकाव्यं**—Only First Five Sargas of the Same with Commentary मल्लिनाथकृतटीकोपेतम्। सर्गाः १—५ मूल्यम् रू. ... ... ०—४—० ०—१—०

१४ **कुमारसंभवं महाकाव्यम्—Kumar Sambhav with 3 known commentaries** कविवरश्रीकालिदासविरचितमिदं

सप्तमसर्गपर्यन्तं मल्लिनाथकृतसंजीविन्या चारित्र्यवर्धन- मूल्यं मार्गव्ययः
कृतशिशुहितैषिण्या च संवलितं तत आसमाप्ति
सीतारामकृतसंजीविन्याऽलंकृतं सुललितैरायसाक्षरैर्मुद्रि-
तमतीव दर्शनीयमस्ति । मूल्यम् रू. १–४–० ०–२–०

१५ **कारिकावली सिद्धान्तमुक्तावलीसहिता— Karikavalee with Siddhanta-Muktavali and other notes** न्यायवैशेषिकदर्शनयोर्व्युत्पित्सूनां कृते प्रणीतेषु प्रकरण-ग्रन्थेषु सिद्धान्तमुक्तावलीसमुद्भासिता कारिकावली मूर्धाभिषिक्तेत्यत्र न विदुषां वैमत्यं किंतु तत्र दीधि-तिकृदुपसृतया विवेकसरण्या संक्षेपतः सूक्ष्मतमानाम-र्थानामुपनिबद्धतया प्रायः खिद्यन्ति नव्याश्छात्राः, इति तेषामुपकारायास्माभिः प्रायः सर्वेषु विषमस्थले-ष्वतिविस्तृतां सरलां सुबोधां च टिप्पणीं पण्डित–जी-वरामशास्त्रिभिः कारयित्वा तया सहेयं दृढतरेषु सुचिक्क-णेषु पत्रेषु स्थूलाक्षरैर्मुद्रिता । सार्धशताभ्यधिकपत्र-युतामपीमां सर्वसौलभ्यायाल्पीयसा मूल्येन वितरामः । मू. रू.... ... ... ०–७–० ०–१–३

१६ **वैशेषिकदर्शनम्—Vaisheshika Darshana with several commentaries** श्रीशंकरमिश्रकृत—**वैशेषिकसूत्रोप-स्कार**—जयनारायणतर्कपञ्चाननभट्टाचार्यप्रणीत—**विवृति**–चन्द्रकान्तभट्टाचार्यप्रणीत—**भाष्य**सहितम् । मू. रू.... ... ... २–०–० ०–३–०

१७ **वादार्थसंग्रहः** (प्रथमो भागः)—**Vadartha Samgraha** First Part अत्र शेषकृ-ष्णकृतं स्फोटतत्त्वनिरूपणं, श्रीकृष्णमौनिकृता स्फोटच-न्द्रिका, गोडबोलेकृतः प्रातिपदिकसंज्ञावादः, वाक्यवादः, हरियशोमिश्रकृता वाक्यदीपिकेति पञ्च ग्रन्थाः संक-लिताः । पण्डितानां प्रौढच्छात्राणां च बहुतरमुप-कारकः । मू. रू. ०–६–० ०–०–६

१८ **वादार्थसंग्रहः** (द्वितीयोभागः)—Second Part अत्र भवानन्दसिद्धान्तवागीशकृतं षट्कारकविवेचनम्,

		मूल्यं	मार्गव्ययः
	जयरामभट्टाचार्यकृतः कारकवादः समासवादश्च, एवकारवादश्चेति चत्वारो ग्रन्थाः सन्ति । मू. रू....	०–६–०	०–०–६
१९	**न्यायबिन्दुः—Nyayabindu** पूर्वमीमांसायाः अधिकरणार्थसंग्राहको ग्रन्थः । तत्सदुपाख्यभट्टवैद्यनाथकृतः । टिप्पनीसहितः । मू.	१–४–०	०–२–०
२०	**महाभागवतम्—Maha Bhagavata** देवीपुराणम् । अस्मिन् भगवत्या ब्रह्मस्वरूपिण्या महाकाल्या दाक्षायणी—गङ्गा—पार्वती—श्रीकृष्णेत्यवतारचतुष्टयचरितानि, महाकाल्या मूलस्थानं च प्रधानतयोपवर्णितानि । प्रसङ्गाद्रामचरितं स्कन्दचरितं पाण्डवचरितं गणेशोत्पत्तिर्गङ्गावतरणं भगवतीगीता ललितासहस्रनाम शिवसहस्रनामादयश्च विषया निरूपिताः । सार्धपञ्चसाहस्री संहितेयम् मू. रू...	२–०–०	०–३–०
२१	**तैत्तिरीयोपनिषत्—Taittiriya-Upanishat** श्रीमच्छंकरभगवत्पादकृतभाष्येणानन्दगिरिकृतटीकायुतेन तैत्तिरीयविद्याप्रकाशेन च सहिता । मू. रू....	१–०–०	०–२–०
२२	**दशरूपकम्—Dasha Rupaka** नाट्यशास्त्रं धनञ्जयविरचितमवलोकसहितं पच्चनदीयपण्डितसुदर्शनाचार्यप्रणीतप्रभाख्यव्याख्यासहितं च । मू. रू.	१–०–०	०–२–०
२३	**ब्रह्मसूत्रवृत्तिः—Brahma Sutra Vritti** अद्वैतमञ्जरी । भगवत्पाद(आद्यशंकराचार्य)शिष्यकृता । मू. रू.	०–१२–०	०–२–०
२४	**चन्द्रालोकः—Chandraloka with a commentary** श्रीपीयूषवर्षजयदेवकविविरचितोऽलंकारग्रन्थः । पायगुण्डोपाह्ववैद्यनाथ (बाळंभट्ट) विरचितरमाख्यव्याख्यासहितः मू. रू.	०–८–०	०–१–०
२५	**महाभारतविराटपर्व—Mahabharata-Virata Parvan with eight commentaries** नीलकण्ठकृतभारतभावदीप—अर्जुनमिश्रकृतदीपिका—चतुर्भुजमिश्रकृतप्रकाश—सर्वज्ञनारायणकृतभारतार्थप्रकाश—विमलबोधकृतदुर्घटार्थप्रकाशिनी—रामकृष्णकृतविरोधार्थभञ्जनी—विषमपदविवरण—		

		मूल्यं	मार्गव्ययः
	वादिराजतीर्थविरचितलक्षाभरणेत्यष्टीकोपेतं विपुलपाठभेदसहितं च । मू. रू.	३–८–०	०–६–०
२६	**चन्द्रकान्त Chandrakanta** (Hindi) (वेदान्त ज्ञानका मुखग्रन्थ) प्रथम भाग. यह वह ग्रन्थ है कि, जो नितान्त निर्भ्रान्त वेदान्त सिद्धान्तका एकांत प्रतिपादक "**चन्द्रकान्त**" मणि बम्बई प्रान्तके प्रसिद्ध साप्ताहिक '**गुजराती**' पत्रके मुख्य-आद्य संपादक गुजराती भाषाके सुविख्यात लेखक, अनेक ग्रन्थोंके निर्माता देशभक्तधुरीण, सारासारविवेकप्रवीण, वैश्यकुलभूषण श्रीमान् शेठ **इच्छाराम सूर्यराम** देसाईके शुद्ध हृदयमें दैदीप्यमान प्रबोधरत्न-भाण्डागारका चमचमाता हुआ एक अमूल्य रत्न है. किं. रू.	२–८–०	०–४–०
२७	**युक्तिप्रकाश–Yukti Prakasha** (Hindi) विचारसागरका कर्ता साधु श्रीनिश्चलदासजीने किया हुआ यह ग्रन्थ हिन्दुस्तानी भाषामें है. इसमें वेदान्तका ३९ सिद्धान्त बहुत अच्छीतरहसे सिद्ध किये गये है. निश्चलदासकी वाणी सब जिज्ञासुलोकोंको ज्ञात होनेसे विशेष निरूपणकी कुछ जरूरत है नहीं. और जिज्ञासुलोकोंको ये ग्रन्थ बहुत उपयुक्त है. पक्की जिल्द और अच्छा कागज.	१–०–०	०–२–०

नोंध—व्ही. पी. खरच जूदा पडेगा.

'**गुजराती**' मुद्रणालयाधिपतिः ।

कोट सर्कल सासून बिल्डिंग–**मुंबई.**